मासिक समाचार पत्र

सीमित प्रसार के लिये

लोकविद्या पंचायत

● सूचना युग में बराबरी के विचार के पुनर्निर्माण का पत्र ●
● लोकविद्याधर समाज के पुनर्संगठन का वैचारिक आधार पत्र ●
● पूँजी आधारित समाज के स्थान पर ज्ञान आधारित समाज के निर्माण का विचार पत्र। ●

अंक 4, पृष्ठ : 8 | सितम्बर 2010 | सहयोग राशि : 5 रुपये

सोमपेटा में गोलीबारी

आन्ध्र प्रदेश के श्रीकाकुलम जिले में सोमपेटा की जगह 14 जुलाई 2010 को एक तापीय बिजलीघर बनाने की परियोजना का विरोध करते हुए 4 आदमी पुलिस की गोलीबारी में मारे गये। यह घटना तब हुई जब तादाद में आये हुए किसान एक 2000 मेगावाट की बिजली परियोजना की नींव ड़ाले जाने का विरोध कर रहे थे। नागार्जुन कन्स्ट्रक्शन कम्पनी बिजली परियोजना द्वारा सोमपेटा में 2640 मेगावाट का तापीय कारखाना बनाने की योजना है।1800 एकड़ से अधिक इलाके में पसरने वाली इस परियोजना से 35गाँव प्रभावित हो रहे हैं। इसके अलावा इससे आन्ध्र प्रदेश के समुद्र तट के बचे हुए एकमात्र दल-दल क्षेत्र का नाश हो जायेगा। यह नीचला इलाका है जहाँ पानी भरा रहता है, जो हजारों एकड़ जमीन पर धान की खेती संभव बनाता है और हजारों मछुआरों को मछली उपलब्ध कराता है। ऐसे क्षेत्र को स्थानीय भाषा में 'बीला' कहते है।

14 जुलाई को हुई गोलीबारी और किसानों की शहादत से 'बीला' जैसे उबल पड़ा जिससे राज्यस्तर पर यह गंभीर चर्चा का विषय हो गया कि क्या बिजलीघर की इतनी अहमियत हो सकती है कि उसके लिये विविध जीव-जन्तुओं एवं विविध पेड़-पौधों के इस हरे-भरे क्षेत्र को बरबाद कर दिया जाय और साथ में किसानों, मछुआरों और कारीगर समुदायों की डेढ़ लाख आबादी को उजाड़ दिया जाय?

किसानों पर गोलीबारी क्यों?

उत्तर प्रदेश में अलीगढ़ में और आन्ध्र प्रदेश में सोमापेटा में किसान पुलिस की गोलियों के शिकार हुये हैं। उनका दोष क्या था? तो वे या तो अपनी कृषि भूमि के अधिग्रहण के खिलाफ अड़े हुये थे या फिर उनकी जमीन के जो दाम सरकार उन्हें दे रही थी उसे मानने से वे इन्कार कर रहे थे। कुछ साल पहले बस्ती (उत्तर प्रदेश) के किसानों पर इसलिये गोली चली थी कि वे गन्ने का अपना बकाया माँग रहे थे। उससे पहले हरियाणा के किसान बड़ी तादाद में सरकारी गोलियों के शिकार हुये थे। उससे भी पहले महाराष्ट्र और कर्नाटक में प्रशासन निहत्थे किसानों की हत्या कर चुका था। उत्तर प्रदेश के भारतीय किसान यूनियन की नींव में ही नौजवानों की शहादत है। सरकारों द्वारा किसानों पर की गई गोलीबारी और किसानों की शहादत की फेहरिस्त बनाई जाय तो बहुत लम्बी बनेगी। क्या बात है कि हर पार्टी की सरकार, हर प्रदेश की सरकार और केन्द्र की सरकार सभी किसानों की विरोधी होती है और वह भी इस हद तक कि खुलेआम उनकी जान लेने में भी नहीं हिचकती! आखिरकार ये सरकारें कैसा हिन्दुस्तान बनाना चाहती हैं? अलीगढ़ में इतनी ज्यादा जमीन इसलिये अधिग्रहित की जा रही है कि वहाँ दिल्ली से आगरा के बीच यमुना एक्सप्रेस-वे के किनारे पाँच अत्याधुनिक नगर बसाने की योजना है। यानि दिल्ली से आगरे तक एक तरफ ये अत्याधुनिक जीवन-शैली वाले पैसे वाले लोग होंगे और दूसरी तरफ वे किसान और ग्राम्यजन जिन्हें मुश्किल से रूखी-सूखी उपलब्ध होगी और जो अपने बच्चों की पढ़ाई की फीस कभी भर ही नहीं पायेंगे।

क्या सभी पार्टियों और सरकारों ने अपना ज़मीर पूँजीपतियों और निगमों के यहाँ गिरवी रख दिया है? वे इसलिये गोलियाँ चला रहे हैं कि चन्द लोगों के लिये एक नई चमक-दमक वाली और सारे ऐशो-आराम वाली दुनिया बनाकर दें! पूँजीपतियों का मुनाफा दिन-दूना-रात-चौगुना बढ़े, अफसरों, नेताओं और सभी उच्च-शिक्षित लोगों को लाखों रुपये प्रतिमाह की तनख्वाहें मिलें, वे और उनके बेटे दुनियाभर में सैर-सपाटा करें और सरकारें इन्हें सारे सार्वजनिक संसाधन मुहैय्या करायें तथा उनकी सुरक्षा के लिये व उनकी ज़िन्दगी में कोई खलल न पड़े इसके लिये किसानों और आदिवासियों पर गोली चलायें! शासन-प्रशासन और राजनीति का इतना क्षय हो चुका है कि उसे पूरा का पूरा ही बदलने की जरूरत है। सार्वजनिक और व्यक्तिगत जीवन दोनों में ही नये मूल्यों, मानकों और कसौटियों तथा उनपर टिके रहने की ताकत की दरकार है। महात्मा गांधी के नेतृत्व में जैसे जज़्बों का निर्माण इस देश में हुआ था वैसे ही जज़्बे के निर्माण की ज़रूरत आज फिर से है। किसानों और आदिवासियों के आंदोलन ही इस निर्माण की भूमि तैयार करते दिखाई देते हैं।

–विशेष संवाददाता

अनाज सड़ने की राजनीति

लाखों टन अनाज के सड़ने को लेकर अखबारों में बड़ी बहस चल रही है। जिस देश में निहत्थे किसानों पर गोली चलाई जाती हो और हजारों किसान हर साल आत्महत्या कर रहे हों वहाँ अनाज का सड़ना कोई हृदय को छू जाने वाली घटना बनेगी इसकी उम्मीद भी शायद नहीं करनी चाहिये। यह व्यवस्था ही ऐसी है। लोगों को बिजली नहीं मिलती लेकिन हम न जाने कितनी बिजली बर्बाद कर देते हैं। उसी तरह शायद तमाम लोगों के पास खाने के लिये नहीं है लेकिन हम अनाज सड़ने देते हैं, शायद सड़ा देते हैं। एक समय यह बड़ा चर्चा का विषय हुआ करता था कि अमेरिका हजारों टन गेहूँ समुंदर में डुबो देता है। लोग कहते थे अनाज डुबो देना तो गलत है। भूखे लोगों में उसे बाँट देना चाहिये। पढ़ने-लिखने वाले यह बताया करते थे कि अमेरिका की अर्थव्यवस्था ही ऐसी है, यानि पूँजीवादी अर्थनीति की बहुत बार ऐसी माँग होती है कि तैयार चीजों को नष्ट कर दिया जाय, डुबो दिया जाय, जला दिया जाय, सड़ा दिया जाय।

कुछ ऐसी ही बात अब अपने ही देश को भी लागू होते दिखाई दे रही है। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि जिस अनाज का भण्डारण हम ठीक से नहीं कर पा रहे हैं उसे सड़ने से पहले गरीबों में बाँट दिया जाय। सरकार का जवाब था कि बाँटा नहीं जायेगा। कृषिमंत्री शरद पवार ने ऐसा वक्तव्य दिया था। उच्चतम न्यायालय ने फिर से कहा कि उन्होंने सरकार को सलाह नहीं दी थी, आदेश दिया था, उनके आदेश का पालन किया जाय। सरकार ने अब कहा है कि सस्ते गल्ले की दुकानों के मार्फत यह अनाज वितरित किया जायेगा, मुफ्त में नहीं बाँटा जायेगा। कृषिमंत्री के वक्तव्यों से मालूम पड़ता है कि सरकारी सोच में ही खोट है। वे अपना कर्त्तव्य एक किस्म की व्यवस्था चलाने में समझते हैं, लोगों को खाना मिले यह जिम्मेदारी या तो मानते ही नहीं या फिर वरीयता क्रम में किसी बेहद नीचे के नायदान पर है। यह तो हो नहीं सकता कि सरकार को अचानक पता लगा हो कि अनाज सड़ रहा है। अनाज निश्चित ही उनकी जानकारी में सड़ रहा था। अनाज का यह सड़ना निश्चित ही उस योजना का हिस्सा है जिसमें सरकार यह तय करती है कि बाजार में कितना अनाज होना चाहिये और वह किस दाम में मिलना चाहिये। कसौटी यह मालूम पड़ती है कि किसान और मज़दूर मजबूर बने रहें और शहरी मध्यम वर्गों को अनाज की आपूर्ति होती रहे।

– सुनील सहस्त्रबुद्धे

अनाज का भण्डारण

सरकार अनाज का भण्डारण करने में सर्वथा नाकाम साबित हुई है। यदि अनाज का भण्डारण व्यवस्थित तौर पर स्थानीय इकाइयों को सौंप दिया जाय तो कई समस्याओं का एक साथ हल निकल सकता है। यह भण्डारण गाँव के स्तर पर होना चाहिये और गाँव को इस बात की छूट होनी चाहिये कि भण्डारण कैसे हो ये वो खुद तय कर सकें। यह बात सर्वविदित है कि भण्डारण का जो ज्ञान किसान घरों की स्त्रियों के पास है वह अत्यधिक कारगर और सस्ता होता है तथा स्थानीय पदार्थों का इस्तेमाल करता है। गाँव में किसी से भी पूछा जाय तो वह निस्संदेह यही कहेगा कि ग्रामीण स्तर पर अनाज के भण्डारण की बड़ी अच्छी व्यवस्थायें की जा सकती हैं। अगर देश के शासकों को इसमें विश्वास नहीं है तो विभिन्न क्षेत्रों में, चुनिन्दा गाँवों में इसका प्रयोग किया जा सकता है।

किसान संगठनों और ग्राम पंचायतों द्वारा गाँवों के हित के दृष्टिकोण से भण्डारण के हक की माँग करनी चाहिये और इस दिशा में स्वैच्छिक कदम भी उठाने चाहिये।

हिमांशु की जनजागरण यात्रा

हिमांशु कुमार छत्तीसगढ़ के दंतेवाड़ा में कई वर्षों से बनवासी चेतना आश्रम बनाकर आदिवासियों के बीच कार्य कर रहे थे। हिमांशु ने आश्रम में रहकर आदिवासियों पर सलवा जुडुम और सीआरपीएफ व पुलिस द्वारा हो रहे अत्याचारों का खुलकर विरोध किया और आदिवासियों के संघर्ष को समर्थन दिया। पिछले वर्ष सरकार ने इनके आश्रम को तोड़ दिया और उन्हें छत्तीसगढ़ छोड़ने के लिये मजबूर कर दिया।

27 जून, 2010 से हिमांशु साइकिल से जन-जागरण यात्रा पर निकले हैं और पंजाब, राजस्थान के गाँवों की यात्रा करते हुए गुजरात और महाराष्ट्र से होते हुए अपनी यात्रा का समापन बम्बई में करेंगे। उनसे हुई वार्ता के अंश इंटरनेट पर डाले गये हैं उन्हीं को यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं।

''इस वक्त दन्तेवाड़ा में जो चल रहा है वह धीरे-धीरे विदेशी कम्पनियों के फायदे में हिन्दुस्तान की दौलत को कौड़ियों के (मोल लूटाने) का अभियान है और आदिवासी आज इस दौलत को बचाने वाले सबसे मज़बूत सिपाही के रूप में खड़ा है। हिन्दुस्तान की सरकार कारपोरेट के सामने बिक चुकी है वो आदिवासी को अपना सबसे बड़ा दुश्मन मान रही है क्योंकि आदिवासी अपने इलाके में उन्हें पैर भी नहीं रखने दे रहा है। हिन्दुस्तान के बाकि इलाकों में जहाँ दिल कर रहा है। सरकारें वहाँ जमीनें छीन ले रही हैं। लेकिन आदिवासी अपने इलाकों में इन्हें घुसने भी नही दे रहा है। इसलिए आज अगर जो विरोध चल रहे हैं जमीन को बचाने के जितने भी आंदोलन चल रहे हैं उनमें आदिवासी एक बड़े नेतृत्व के रूप में उभर रहा है। और हमें लगता है कि देश के लोगों को आदिवासियों का इस समय साथ देना चाहिए क्योंकि वह देश की दौलत को लूटने से बचा रहे हैं और सरकार के कारपोरेटाइजेशन की प्रक्रिया के सामने खड़ा है। यह लूट कैसे हो रही है, आदिवासियों के साथ क्या हो रहा है यह देश के लोगों को मालूम नही हो रहा है और यह उन्हें मालूम हो इसी मकसद से हम इस साइकिल यात्रा पर निकले है। देश के अन्य हिस्सों में लोगों को बड़ा आश्चर्य होता है जब हम उन्हें यह बताते हैं कि दन्तेवाड़ा में सच्चाई यह है कि 644 गाँवों को जला दिया गया है। लड़कियों के साथ बलात्कार हुआ है उन्हें थाने में बुलाकर पीटा जाता है, छोटे-छोटे बच्चों की उंगलियाँ काट दी गयी हैं। जब हम यह बताते हैं तो लोगों की आँखें खुल जाती हैं। और अगर इस वक्त आदिवासी हार गया तो सरकार के मुँह में खून लग जायेगा और ये देशभर में गाँव की ज़मीने हैं, किसानों की ज़मीनें हैं, उनको छीनकर कारपोरेट को देना शुरू कर देगी। इसलिए देश के जवानों को इस खतरे का, यह खतरनाक खेल चल रहा है इसके बारे में बताने की ज़रूरत है और इसीलिए हम घूम रहे हैं। पंजाब में हमें अच्छा समर्थन मिला है। राजस्थान में अब धीरे-धीरे लोग ज्यादा सुन रहे हैं। इसमें जो शहरों में लोग रहते हैं उनसे मुझे खास तौर पर कहना है कि हम अगर शहरों में बैठे रहेंगे और इंटरनेट पर लिखेंगे तो उससे कोई खास फर्क नही पड़ने वाला है। क्योंकि न सरकार इंटरनेट पर लिखा पढ़ती है और न जनता पढ़ती है। हम जो सामाजिक कार्यकर्ता इंटरनेट पर हैं वे ही लोग इसे पढ़ते हैं। इससे हम सरकार की कोई नीति नही बदल पायेंगे। सरकार पर कोई दबाव नही बना पायेंगे। जब तक हम आम जनता के बीच नहीं जायेंगे, वो जनता जो वोट देती है, जो सरकार बनाती है, बदलती है, उस जनता के पास नही जायेंगे तब तक न हमे इस देश की समस्यायें नहीं पता चलेंगी न हम लोगों को जगा पायेंगे और न हम सरकारों पर दबाव बना पायेंगे। इसलिए मैं चाहूँगा कि इस तरह की यात्रा लोग अपने आप करें, लोगों के बीच जायें या ये यात्रा चल रही है इसमें भी अगर शामिल हों तो हम कोई फर्क डाल पायेंगे।''

''जगह-जगह लोग हैं जो लड़ रहे हैं और उनकी उपस्थिति स्थानीय समाज में तो है लेकिन देश के स्तर पर नही है। हम जो थोड़े

... शेष पेज 7 पर

अतिक्रमण और सुन्दरीकरण का सच

– प्रेमलता सिंह

स्वच्छ-सपाट चौड़ी सड़कें, कतार से निर्मित सुन्दर भवन, ऊँची- पक्की दुकाने, शहर के मध्य बड़े भू-भाग में तने हुए मॉल, बड़े-बड़े होटल, सिनेमागृह भला किसे नहीं लुभाते हैं। शहर के सुन्दर विकास का पैमाना भी यही माना जा रहा है। परन्तु ये व्यवस्थायें समाज के अधिसंख्य लोगों को सुलभ नहीं हो सकती हैं। आम आदमी अपने ज्ञान-कौशल व परिश्रम से छोटे-छोटे व्यवसाय करके ही जीविकोपार्जन करता है। पटरी-ठेले, खोमचे, गुमटी और अर्धनिर्मित छोटी-छोटी दुकानों वाले लोग ऐसे ही व्यवसायी हैं। इनके लिए शहर में कहीं कोई स्थान नहीं है जहाँ ये ठहर कर अपना व्यवसाय कर सकें। फिर भी जीविका चलानी है। अतः अतिक्रमण की जद में यही लोग आते हैं। छोटे धंधे करने वाले ये लोग कौन हैं, कहाँ से आये हैं, क्यों करते ही इतने छोटे धंधे? ऐसे अनगितन ज्वलंत प्रश्न हैं जिनको समझे बगैर अतिक्रमण और सुन्दरीकरण का अर्थ स्पष्ट नहीं हो सकेगा।

वाराणसी के छोटे उद्योग और उनकी स्थिति

वाराणसी शहर सदा से छोटे-छोटे घरेलू उद्योगों का शहर रहा है। औसतन हर तीन घर के बाद चौथे घर में कोई उद्योग होता रहा है। कई मुहल्ले अपने प्रमुख उद्योगों के कारण प्रसिद्ध रहे हैं। उदाहरण के लिए कश्मीरी गंज लकड़ी के खिलौने, लकड़ी की गोटी और अन्य सजावटी, उपयोगी वस्तुओं को निर्मित करने के लिए जाना जाता है। काशीपुरा क्षेत्र को कभी पीतल, तांबे, काँसे के बर्तन बनाने के लिए प्रसिद्धि मिली हुयी थी। इसके अतिरिक्त काँच के मोती बनाने, माला गूँथने, पत्थर के कार्य, रेडीमेड वस्त्र बनाने, वस्त्रों की छपाई-रंगाई, गली के हर मोड़ पर आटा चक्की का होना, नमकीन-अचार पापड़, बड़ी बनाने के छोटे कारखाने, बिस्किट्स बनाने के कारखाने, जूते चप्पल बनाने के कार्य, दर्जीगिरी, सुनारीगिरी जैसे अनेकों घरेलू उद्योग रहे हैं। इनमें हजारों लोगों को रोजगार प्राप्त था। परन्तु आज कच्चे माल का महँगा होना, बिजली की निर्बाध कटौती,बाजार व्यवस्था का नियंत्रण विहीन होना, पूँजी की कमी, सरकार का असहयोग, दोषपूर्ण सरकारी नीतियाँ और नौकरशाही की मनमानी के चलते इनमें से केवल एक चौथाई इकाईयाँ ही सुचारु रूप से चल रही हैं। एक चौथाई पूर्ण रूप से बन्द हो चुकी हैं। शेष इकाइयाँ जैसे तैसे चल रही हैं। ऐसी परिस्थिति में ये बेरोजगार हुए हुनरमन्द कारीगर क्या करें, कहाँ जायें, अपनी जीविका का साधन कैसे जुटायें? ये लोग बहुत पढ़े-लिखे भी नहीं है कि किसी नौकरी की खोज में लगें।

बनारसी सिल्क उद्योग

अब वाराणसी के बड़े और विस्तृत क्षेत्र में फैले हुए विश्व प्रसिद्ध बनारसी सिल्क उद्योग की पड़ताल करते हैं। यह उद्योग लाखों लोगों की आजीविका का साधन है। बनारसी सिल्क उद्योग वाराणसी के आसपास के कई किलोमीटर परिक्षेत्र में फैला हुआ हैं। यह बनारसी साड़ी बनाने की प्राचीन और पारम्परिक कला है जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में स्थानान्तरित होती रहती है। बनारसी हैन्डलूम उद्योग से प्रतिवर्ष चार सौ करोड़ की आय होती है जो दस लाख लोगों को जीविका देती है। इन कपड़ों की जब इतनी माँग है तो बुनकर इतनी गरीबी में क्यों रहते हैं? राजन नामक ड्राइवर का कहना है कि आठ-दस वर्ष पहले हमारे गाँव में 600 बुनकर थे अब केवल दस-बारह शेष बचे हैं। इस समय पांच लाख से अधिक बुनकर बेरोजगार हैं। अधिकांश बुनकर मुस्लिम हैं व अन्य गरीब जातियों के हिन्दू हैं।

बनारसी सिल्क उद्योग में वाराणसी शहर के अतिरिक्त आस-पास के गाँव जैसे लोहता, बड़ा गाँव, सारनाथ क्षेत्र, वीरापट्टी क्षेत्र, दीनापुर, सरायमोहाना, सरैया, रामनगर आदि और जिले जैसे चन्दौली, मिर्जापुर, आजमगढ़ के लोग बुनकरी के कार्य से जुड़े हुए हैं। इनमें अधिकतर कारीगर वाराणसी के गद्दीदारों का माल मजदूरी पर बनाते हैं। गद्दीदार निर्मित माल में नुक्स निकाल कर मजूदरी कम करके भुगतान करते हैं वह भी समय पर नहीं होता। कुछ लोग पूँजी जुटा कर कच्चा माल खरीद कर अपने बलबूते माल तैयार करते है। बाजार में अपना माल बेचने के लिए इन्हें बहुत पापड़ बेलने पड़ते हैं। यदि ग्राहक मिल गये तो मूल्य मिल जाता है अन्यथा भटकना होता है। इनकी समस्या है कि माल नही बिका तो पूँजी फंस गयी और यदि पूँजी नहीं निकली तो दूसरा कच्चा माल नही खरीद सकते। ये लोग हमेशा कर्ज में डूबे रहते हैं। यह कर्ज साहूकारों का होता है बैंक का नही। मतलब यह है कि इनके लिए एक तरफ कुआँ तो दूसरी तरफ खाई।

एक कुशल कारीगर बनने के लिए कम से कम दस वर्ष का प्रशिक्षण लेना पड़ता है। इनके प्रशिक्षण में सरकार का एक पैसा भी खर्च नही होता है बल्कि प्रशिक्षण के समय से ही कारीगर उत्पादन कार्य में लग जाते हैं। ज्ञान, हुनर, कला से सम्पन्न यह कारीगर परम्परागत कला को निखार देता हुआ समकालीन आधुनिकता का भी समावेश करता रहता है। इसीलिए बनारसी सिल्क उद्योग प्राचीनतम कला होते हुए भी नित्य नवीन और लुभावनी है।

इतनी उच्च कोटि की कारीगरी के होते हुए भी इस धंधे से लाखों लोग बेरोजगार कैसे हो गये? यह चिंतन का विषय हैं। यदि हम वाराणसी शहर के बहरडीहा और जैतपुरा क्षेत्र का गहराई से अवलोकन करें तो ज्ञान-हुनर और बेरोजगारी की स्थिति को समझ सकते हैं। सरकारी दोषपूर्ण नीति, बाजार की दुहरी चाल, कच्चे माल की चोरबाजारी, उनका महँगा होना, पूँजी का अभाव, सरकार का असहयोग और माल का विपणन में बिचौलियों की भूमिका तथा नौकरशाही की दबंगई के चलते इतना समृद्ध उद्योग क्षेत्र सिमट रहा है। इस समय 5 लाख से अधिक कारीगर बेरोजगार हैं।

कृषि क्षेत्र

चन्दौली, मिर्जापुर, आजमगढ़, सोनभद्र, गाजीपुर जैसे पूर्वांचल के जिलों खेती करना घाटे का कार्य बनता जा रहा है। कृषि की लागत अधिक पड़ रही है। महँगा बीज, महँगी खाद, सिंचाई मानसून आधारित, दैवीय आपदायें इत्यादि से जूझने के बाद तैयार उपज का मूल्य क्या होगा? किसान नहीं जानते हैं। जैसे अभी गेहूँ के मूल्य निर्धारण के खेल से सभी लोग परिचित होंगे। किसप्रकार गेहूँ के दानों में सिकुड़न बता कर मूल्य की साजिश रची गयी।

वाराणसी शहर के आस-पास के गाँवों में प्रायः सब्जियों की खेती करने वाले छोटे किसान हैं। बिजली, पानी, सूखे, बाजार की मूल्य निर्धारित नीतियों से सभी लोग प्रभावित हैं। दूसरी ओर कृषि भूमि का रकबा सिमटता जा रहा है। परिणाम स्वरूप ये किसान लोग अपनी दूसरी जरूरतों की पूर्ति के लिये अन्य व्यवसाय तलाशते हैं। वैसे भी कृषि क्षेत्र और कपड़ा क्षेत्र ही ऐसे उद्योग हैं जहाँ स्त्री-पुरूष दोनों को रोजगार पारिवारिक स्तर पर मिलता है।

अब अपनी अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किसान क्या करें, कहाँ जायें? निश्चित रूप से छोटी दुकानदारी और मजदूरी के कार्य के अलावा दूसरा कोई रास्ता नहीं सुझायी देता है।

छोटे घरेलू उद्योग, बनारसी सिल्क उद्योग, और कृषि क्षेत्र का अध्ययन करने से हम इतना अवश्य ही समझ गये कि सरकार की नीतियाँ जनकल्याणकारी नहीं हैं। सभी योजनायें बड़ी पूँजी वालों के लिए बनती हैं, विशेषरूप से विदेशी पूँजी को लुभाने के लिए जन विरोधी कार्य किये जाते हैं और नीतियाँ भी तय की जाती हैं। तभी तो इन सम्पन्न उद्योगों से लाखों की संख्या में लोग विस्थापित होते हैं। परन्तु उनके लिए किसी भी किस्म की व्यवस्था नही बनायी जाती है। ये सभी लोग ज्ञानी, हुनरमन्द और कला कौशल से सम्पन्न लोग हैं। इनके समक्ष आजीविका की समस्या यक्ष प्रश्न की तरह खड़ी है। सभी लोग एक साथ किसी अन्य स्थान या कार्य पर नहीं लग सकते और न ही इसका कोई प्रबन्ध है, सबकी स्थितियाँ और क्षमतायें भी अलग-अलग हैं। ऐसी परिस्थिति में अनिवार्य रूप से जिसका जहाँ (कार्य अथवा स्थान) सिर समायेगा वहीं अपनी सामर्थ्य के अनुसार कार्य करेगा। ये लोग अधिक पढ़े-लिखे भी नहीं हैं। इनमें किसान, कारीगर समाज के (कुर्मी, कोइरी, कुम्हार, तेली, सुनार, अहीर, मल्लाह, गोंड़, दलित, जुलाहा, तांती, कोरी इत्यदि) भिन्न-भिन्न जातियों के लोग हैं।

अतिक्रमण

अपने-अपने उद्योगों से विस्थापित हुए लोग अपना और परिवार का पेट पालने के लिए छोटे धंधे या मजदूरी का कार्य करते हैं। सड़क की पटरी पर फोल्डिंग (चारपाई) डालकर नित्य उपयोग की वस्तुएँ बेचते हैं। कहीं-कहीं स्थानीय लोगों का सहयोग लेकर गुमटियाँ भी रख लेते हैं। ठेलों पर सब्जियाँ, खाद्य पदार्थ, सजावटी सामान, कपड़े, जूते-चप्पल, फल, प्लास्टिक का सामान, पहनने के वस्त्र, बर्तन इत्यादि सामान थोड़ी पूँजी से जुटाकर रख लेते हैं। कभी घूमकर (फेरी लगाना), कभी मुख्य बाजार की सड़क पर ठहर कर बिक्री करते हैं और अपने परिवार का पालन-पोषण करते हैं। कुछ गुणी लोग सड़क के किनारे ढाबे बना लेते हैं जहाँ नित्य श्रम करने वाले (रिक्शा चालक, दिहाड़ी मजदूर) लोग आकर क्षुधा पूर्ति करते हैं। कुछ स्त्रियाँ सड़क के किनारे एक चूल्हा रखकर रोटी-सब्जी बनाकर बेचती हैं और जीविका चलाती हैं जैसे कबीरचौरा, लंका आदि पर ठेले पर बाटी-चोखा बनाकर पेट पालने वाले स्त्री-पुरूष भी हैं। लंका क्षेत्र में बड़े आसानी से ऐसे लोग दिख जायेंगे जहाँ बीमार लोगों के तीमारदारों को आसानी से कम मूल्य में भोजन सुलभ हो जाता है। सभी जन अपने बुद्धि-कौशल से आजीविका जुटाते हैं। पटरी, गुमटी, ठेले, खोमचे लगाकर नित्य उपयोग के सामानों की बिक्री करने वाले लोगों से पुलिस वाले पैसे लेते हैं। गुमटियाँ रखने के लिए नगर निगम के अधिकारियों की जेबें भरनी होती हैं। सड़क की पटरी पर दुकानदारी करने के लिए पुलिस वालों के साथ-साथ जिन पक्की दुकानों के सामने ये खड़े होते हैं उन दुकानदारों को भी रुपये देने पड़ते हैं। यह दैनिक या साप्ताहिक तय होता है। पुलिस वाले बिना मूल्य दिये ही सामान उठा ले जाते हैं। थोड़ा भी एतराज करने पर डंडा फटकारते हैं और धमकी देते हैं। इन व्यवसाइयों को अपने कारोबार को चलाने के लिए अनेकों बार अनेकों तरह से अपमानित होना पड़ता है। पर क्या करें?

1997-98 में नारी हस्तकला उद्योग समिति और कारीगर समाज ने मिलकर राजघाट क्षेत्र, मच्छोदरी, विश्वेवरगंज, मैदागिन, कबीरचौरा, बेनियाबाग, नई सड़क, चेतगंज, गोदौलिया, दशाश्वमेध क्षेत्र, सुन्दरपुर क्षेत्र, इंग्लिशिया लाइन, पांडेयपुर क्षेत्र, पंचक्रोशी क्षेत्र के इन छोटे व्यवसाइयों के बीच जाकर उनकी वस्तुस्थिति जानने का प्रयास किया। उनके घरों की स्त्रियों की स्थिति का भी अवलोकन किया गया। 'कारीगर समाज' अखबार के माध्यम से उनकी समस्याओं को उठाया गया। इस अखबार से बुद्धिजीवी लोग भी जुड़े थे। विशेष रूप से ठेले-पटरी, गुमटी, खोमचे वाले लोगों की वस्तुस्थिति को उन्हीं लोगों के माध्यम से जानने का कार्य किया गया। इन कारोबारियों के प्रशिक्षण, रोजगार और कार्यों में सरकार का कुछ भी नही खर्च होता है सिवाय इसके कि वे लोग अपने रोजगार के लिए सड़कों का सहारा लेते हैं। इसे ही अतिक्रमण कहा जा रहा है। सड़क पर दुकान लगाना गलत है पर जायें तो कहाँ जायें? जिनके श्रम, कार्य-कौशल से शहर को समृद्धि मिली, उस शहर की जमीन से वही लोग धकियाये जा रहे हैं। यह विडम्बना नहीं तो और क्या है?

प्रशासन जब चाहता है इन लोगों को उजाड़ देता है, अतिक्रमण के नाम पर। किसके लिए हाइ-फाइ व्यवस्थायें बनायी जा रही हैं? उजाड़े गये लोग कहाँ जायें? इन सबका जवाब कोई भी नहीं देना चाहता। देश को समृद्ध करने वाले लोग बड़े यत्न से हाशिये पर डाल दिये जा रहे हैं।

अतिक्रमणकारी कौन है?

मनुष्य की प्रथम आवश्यकता भोजन, वस्त्र और आवास है। इसकी पूर्ति के लिए उपार्जन करना मनुष्य का मूल अधिकार है। उजाड़ की क्रिया से सरकार मनुष्य के बुनियादी हक को छिन लेती है। मनुष्य द्वारा निर्मित सभी व्यवस्थायें मनुष्य के लिए ही होती हैं और सदियों से मानव समाज द्वारा अर्जित-संचित ज्ञान, कला-कौशल से ही ये व्यवस्थायें फूलती-फलती हैं। फिर यह दुर्व्यवस्था क्यों और किसके लिए? यदि गहराई से सम्पूर्ण परिस्थितियों का अवलोकन किया जाय तो हमें यह मालूम होगा कि अतिक्रमण छोटे धंधे वाले नहीं करते, बल्कि सरकार ही अतिक्रमण कर रही है। क्योंकि सरकार बड़ी पूँजी वालों और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हित की हिमायती है। उनकी ही सुविधा समृद्धि के लिए नीतियाँ, योजनायें बनाती है। सरकार की नीतियाँ बुनियादी रूप से आम आदमी के हक, स्थान, विद्या, संसाधनों का अतिक्रमण करने वाली हैं। तभी तो किसान, कारीगर, आदिवासी अपने स्थान, अपने ज्ञान, हुनर, कौशल और उद्योग से विस्थापित हो रहे हैं। विस्थापन का होना ही बड़ी घटना है और यह मूल अधिकार का हनन है। ●

भूपौली पम्प कैनाल चलाने के लिए आन्दोलन

चंदौली (उ.प्र.)। किसानों की धान की नर्सरी डालने की समस्या को देखते हुए भारतीय किसान यूनियन की ओर से भूपौली पम्प कैनाल पर आकस्मिक बैठक 27 जून को बुलाई गई। भूपौली पम्प कैनाल के न चलने के सवाल पर पंचायत में चर्चा की गयी। पंचायत ने सर्व सम्मति से निर्णय लिया कि भूपौली पम्प कैनाल का निरीक्षण किया जाय। निरीक्षण के दौरान यह जानकारी हुई कि मोटर खराब पड़े हैं, बार्ज बालू पर शिफ्ट हो चुका है, सिंचाई विभाग का एक भी कर्मचारी उपस्थित नहीं था। ठेकेदार के लेबर पम्प चला रहे थे। आठ पम्प में से मात्र 2 पम्प चल रहे थे। स्थिति को देखते हुए सिंचाई विभाग को पत्रक दिया गया और उसमें यह बताया गया कि एक सप्ताह के भीतर अगर आठों पम्प नही चलाये गये तो 5 जुलाई से भा0 कि0 यू0 धरना देने के लिए बाध्य होगा। दिनांक 5 जुलाई को भारत बन्द होने के कारण धरना की तिथि आगे बढ़ाकर 9 जुलाई कर दी गयी। इसकी सूचना अधिशासी अभियन्ता, मुख्य अभियन्ता (सोन) तथा जिलाधिकारी चन्दौली को दी गयी।

निर्धारित तिथि 9 जुलाई को पुनः भूपौली पम्प कैनाल पर पंचायत हुई इसमें भारतीय किसान यूनियन के साथ अखिल भारतीय किसान सभा की भी भागीदारी रही। पंचायत में सर्व सम्मति से निर्णय लिया गया कि भूपौली पम्प कैनाल पर धरना आज से ही शुरू कर दिया जाय। सभी लोग धरने पर बैठ गये। धरना सात दिनों तक अनवरत चलता रहा। धरने के दौरान अखिल भारतीय किसान सभा के साथी श्रवण कुमार कुशवाहा और दिनेश सिंह का पूरा सहयोग मिलता रहा। धानापुर के पूर्व विधायक प्रभुनारायण सिंह यादव अपने सहयोगियों के साथ आकर जोरदार समर्थन दिये। धरने के दौरान अधिशासी अभियन्ता तथा एस.डी.एम. सदर धरना स्थल पर आये और कहने लगे कि आप धरना समाप्त कर दें 2 दिन के अन्दर 6 पम्प चला दिया जायेगा। किसानों ने कहा कि आप पम्प चलवा दें हम धरना स्वतः समाप्त कर देंगे। अन्ततः 7 दिन तक धरना करने के बाद 6 पम्प के चालू हो जाने के बाद धरना समाप्त करने की जगह स्थगित कर दिया गया।

धरने में बढ़ चढ़कर हिस्सा लेने वालों में ओंकार नाथ पाण्डेय, गजानन्द सिंह, नगीना प्रसाद शर्मा, श्री राम सिंह, दीनानाथ श्रीवास्तव, श्रवण कुमार कुशवाहा, दिनेश सिंह, अजय राय इत्यादि लोग रहे। बनारस के साथी सुनील सहस्त्रबुद्धे, दिलीप कुमार दिली, लक्ष्मण प्रसाद मौर्य, इत्यादि सतत समर्थन में उपस्थित थे। धरने का नेतृत्व वाराणसी मण्डल अध्यक्ष जगदीश सिंह यादव ने किया।

डोमरी गाँव पर सांस्कृतिक शहर समाज उजाड़ने की संस्कृति

वाराणसी की गंगाजी के रेता पर सरकार एक सांस्कृतिक शहर बसाने की योजना बना चुकी है। इस योजना के तहत डोमरी गाँव की 141.57 एकड़ जमीन का अधिग्रहण किया जा रहा है। डोमरी गाँव के किसान जमीन देने के लिये तैयार नहीं हैं। किसानों ने एकजुट होकर 'किसान संघर्ष समिति' के झण्डे तले 12 जुलाई को कचहरी पर धरना दिया। किसानों का कहना है कि जमीनों के जाने से उनके सामने भुखमरी का संकट छा जायेगा। प्रशासन के न ध्यान देने पर किसानों ने 29-31 तक क्रमिक अनशन किया। किसान किसी भी शर्त पर अपनी जमीन देने के लिये तैयार नहीं हैं। लोगों को विस्थापित कर, उन्हें भूखों मरने के लिये छोड़ देने वाला यह सांस्कृतिक शहर किस संस्कृति का वाहक होगा? धरने का नेतृत्व ग्रामप्रधान चम्पा देवी, राजेन्द्र पटेल, जयंत पटेल, छोटेलाल, आदित्य नारायण, घनश्याम पटेल, लालचन्द पटेल, जगनारायण, संदीप व गणेश आदि ने किया।

निमंत्रण

असिंचित खेती पर ज्ञान पंचायत

25–26 सितम्बर 2010, नागपुर

देश में कृषि में लगी ज़मीन का 70-75 प्रतिशत हिस्सा असिंचित है। इसका मतलब है कि इतनी ज़मीन पर जो कि लगभग 10-11 करोड़ हेक्टेयर है, खेती मुख्यतः बरसात के पानी के बल पर होती है। यह ज़मीन जिन क्षेत्रों में है वहाँ 1000 मिलीमीटर (40 इंच) या कम वर्षा होती है। ये क्षेत्र बारिश पर निर्भर कहलाते हैं। इन ज़मीनों के वे हिस्से, जहाँ 500 मिमी से भी कम वर्षा होती है, सूखी खेती के क्षेत्र कहलाते हैं। खेती की इन ज़मीनों पर किसान अधिकतर अनाज, तिलहन और दालों की फसलें उगाते हैं। जाहिर है कि कृषि के ये क्षेत्र खेती के लिए ज़रूरी पानी सिंचाई प्रकल्पों की नहरों से नहीं पाते हैं, बल्कि पानी की अपनी जरूरतों को वर्षा के अलावा कुँओं के पानी से ही पूरा कर पाते हैं।

हरित क्रान्ति के चलते जो व्यवस्थाएँ कायम हुईं उन्होंने पानी की उपलब्धता के विषय में बड़े पैमाने पर गैरबराबरी को जन्म दिया। इसी के साथ सरकारी संसाधनों के वितरण में भी भारी विषमता प्रस्थापित हुई। कृषि सम्बन्धित वित्तीय व्यवस्थाओं में सूखी खेती को सौतेला समझा गया। संसाधन और अनुदान को लेकर सिंचित क्षेत्रों का दबदबा बढ़ा। नहर का पानी, बिजली और रासायनिक खादों पर मिलनेवाले अनुदानों का लाभ स्वाभाविकतौर पर सिंचित ज़मीन के किसानों को ही मिलना था। बात यह बिल्कुल नहीं है कि इससे सिंचित क्षेत्रों का किसान टाटा-बिड़ला बन सका। ऐसा कुछ तो हुआ नहीं। बल्कि हुआ यह कि समय-समय पर सूखे क्षेत्र के किसान किसी भी प्रकार के सरकारी छत्र से वंचित रहे। इन क्षेत्रों की खेती की टूट लाज़िमी तौर पर बढ़ी।

इस स्थिति का दूसरा पक्ष यह है कि सूखी खेती करने वाला किसान मात्र अपने ज्ञान के बल पर अपना कारोबार चलाता रहा है। उसके पास खेती का जो ज्ञान है वह निश्चित अर्थ में नये-नये रूपों में आविष्कृत हुआ होगा। यह माना जाना चाहिए कि पिछले कुछ दशकों का इन क्षेत्रों की खेती का इतिहास इस आविष्कार का इतिहास है। लेकिन इस बात का सरकारी लेखे-जोखे और क्रियाकलापों में कोई महत्व नहीं। आज यह सर्वाधिक तौर पर माना जा रहा है कि भारतवर्ष की खेती का भविष्य इस पर निर्भर करता है कि सूखे क्षेत्रों की खेती का क्या होता है। सूखी खेती की प्रणालियों पर संशोधन का अर्थ क्या कृषि-विज्ञान की प्रयोगशालाओं और वैज्ञानिकों तक सिमट कर रहने दिया जा सकता है? लगातार हर प्रकार की विपरीत नैसर्गिक और प्रशासकीय-राजनैतिक परिस्थितियों से जूझते हुए, सूखी खेती को जिन्दा रखने का चमत्कार सूखे क्षेत्रों के किसान ने कर दिखाया। इस जीवित प्रयोग को हर प्रकार कि सुविधा से युक्त प्रायोगिक खेती से क्या किसी अर्थ में कम आँका जा सकता है? मुख्य प्रश्न यह बनता है कि सूखी खेती के ज्ञानी किसान का इस खेती को लेकर होनेवाली सरकारी पहलों, नीतिनिर्धारण की प्रक्रियाओं और योजनाओं में क्या स्थान है? अपना न्यायोचित स्थान इन कृषि-विद्याधरों को आप ही बनाना होगा। कोई उसे वह स्थान देनेवाला नहीं। अगर ऐसा हो सकता था तो न आज की व्यवस्थायें कायम होतीं और न उसका गला घोंटती।

25-26 सितम्बर 2010 की नागपुर में आयोजित ज्ञान पंचायत का उद्देश्य इसी सत्य को उजागर करना है।

पंचायत में होने वाली दो दिनों की चर्चा उस मुकाम की ओर जाने में मदद करेगी जहाँ किसान अपने ज्ञान का दावा पेश कर सकें। चर्चा का समापन उन सुझावों को सरकार के सामने लाकर होगा जो इन किसानों के अपने अनुभवों से उभरकर सामने आये हों। पंचायत में महाराष्ट्र के अलावा आन्ध्र प्रदेश, मध्य पदेश और छत्तीसगढ़ के प्रतिनिधि शामिल होंगे।

गिरीश सहस्रबुद्धे **विजय जावंधिया** **विलास भोंगाड़े**

किसान आत्महत्या-समस्या और हल

– विजय जावंधिया

किसानी और किसान दोनों की स्थिति लगातार बिगड़ रही है। किसान मरता नहीं सिर्फ इसीलिए जीता है, यह कहना शायद ज्यादती नहीं होगी। कहते हैं दुनिया सिमट रही है। कौन जाने? राजनेता, अफसर और बुद्धिजीवी तो किसान, किसानी और सामान्य जनों से दूर ही जाते नज़र आते हैं। सन् 1991 से लागू की गयी मुक्त अर्थनीति के परिणाम स्पष्ट रूप से नज़र आने लगे हैं।

सन् 47 से पहले राष्ट्रीय आय का आधे से अधिक हिस्सा किसान के उत्पादन से आता था। अब यह आँकड़ा 18-20 प्रतिशत पर आ गया है। महाराष्ट्र में तो खेती की आय कुल आय के मात्र 15 प्रतिशत बनती है। कृषि उत्पाद तो काफी बढ़ा है। फिर ऐसा क्यों? कृषि उत्पादन बढ़ा पर आय नहीं बढ़ पायी। परिणामतः अनाज के गोदाम तो भरे पड़े हैं लेकिन किसान आत्महत्या कर रहे हैं। सारी दुनिया को गरीबी और बेकारी की गर्त से निकालने का दावा पेश करने वाली अंतर्राष्ट्रीय अर्थ संस्थाओं की नीति भी गरीब देशों को निचोड़ने की है। विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व व्यापार संगठन की नीतियाँ गरीबों को अधिक गरीब और अमीरों को और अमीर बनाती हैं।

कृषि उत्पादों के दामों को नीचे रखना ही सरकारी नीति है। यह विचार शेतकरी संघटना ने रखा। इस विचार को रखने वाले और भी थे। जैसे महाराष्ट्र के शेतकरी कामगार पक्ष के नेता श्री एन.डी. पाटिल ने अपनी मराठी पुस्तिका 'शेतकऱ्यांची कैफियत' में कहा 'किसान की पैदावार को बाज़ार में उचित दाम दिलाने की जिम्मेदारी नहीं ली जाती। उत्पादन में आनेवाली लागत और किसान और उसके परिवार को एक निश्चित स्तर के जीवनयापन के लिए जरूरी खर्च के आधार पर सरकार को उत्पादों का मूल्य तय करना चाहिए। इसकी भी व्यवस्था करना जरूरी है कि ये मूल्य किसान के हाथों पड़े'।

देश का प्रथम किसान आयोग देश के वर्तमान प्रधानमंत्री श्री मनमोहन सिंह की नेतृत्व वाली सरकार ने स्थापित किया था। आयोग के अध्यक्ष और हरित क्रान्ति के प्रणेता डा0 एम0 एस0 स्वामीनाथन ने सरकार को सूचित किया है कि कृषि विकास का मापदण्ड किसान की आय की बढ़ोत्तरी में होना चाहिए, न कि कृषि उत्पाद में बढ़त। कृषि उत्पाद के दाम तय करने के तरीके में भी परिवर्तन करने की बात डा0 स्वामीनथन ने कही है। उन्होंने कहा है कि उत्पादन पर लागत के जो आँकड़े कृषि मूल्य आयोग जमा करता है, जिन्हें कॉस्ट कहा जाता है, उन पर 15 प्रतिशत मुनाफा जोड़कर उत्पादों के मूल्य तय करने का तरीका अन्यायकारी है। कॉस्ट पर कम से कम 50 प्रतिशत जोड़ा जाना चाहिए। इन सुझावों की अनदेखी जारी है। इस बात को नकारा नही जा सकता कि वाज़िब मूल्य की माँग करने वाले किसान आन्दोलनों को तथाकथित मुक्त अर्थनीति के जंजाल में फँसाकर किसानों के प्रति विश्वासघात किया गया।

झूठा प्रचार और किसान आत्महत्या

किसानों की लूट का इतिहास पुराना है। गोरा अंग्रेज इसी लूट की मंशा लेकर आया था। कम दाम पर कपास इंग्लैण्ड ले जाकर मैनचेस्टर व लंकाशायर की मिलों में ले जाकर उस कपास से बना कपड़ा वापस भारत में ऊँचे दामों पर बेचने का काम अंग्रेजों ने किया। इसी बदौलत वहाँ के उद्योगों में पूँजी का संचय हो पाया। इस औपनिवेशिक नीति की खिलाफत की बुनियाद पर स्वतंत्र भारत का निर्माण हुआ। लेकिन स्वतंत्रता किसान की लूट पर रोक नहीं लगा सकी। बजाय मैनचेस्टर के सस्ता कपास मुम्बई, अहमदाबाद की मिलों में पहुँचा। मुनाफा शहरों ने पाया। गाँव वीरान होने लगे। इसीलिए विदर्भ में कपास उत्पादक संघ का आन्दोलन डा0 म0 गो0 बोकरे के नेतृत्व में खड़ा हुआ। परिणाम यह है कि कपास एकाधिकार खरीद योजना बनीं। सन् 1962 से सारी कपास खरीदने की घोषणा महाराष्ट्र सरकार की ओर से हुई। लेकिन फिर भी न्याय न मिल पाया। इसी कारण सन् 1980 से शेतकरी संघटना के नेतृत्व में आन्दोलन ने जोर पकड़ा। इस आन्दोलन में बड़ी भारी संख्या में किसान शामिल हुए। लेकिन 1952 में मुक्त अर्थव्यवस्था का समर्थन किसानों के साथ विश्वासघातक सिद्ध हुआ। किसानों द्वारा आत्महत्या की घटनाओं में बढ़ोत्तरी सन् 1995 के बाद अर्थात विश्व व्यापार संगठन की स्थापना के बाद ही हुई है।

यह प्रचार की मुक्त अर्थनीति के अन्तर्गत कृषि उत्पाद का निर्यात बढ़ेगा और किसान अधिक दाम पाकर उन्नति करेगा, साफ झूठा सिद्ध हुआ। कृषि उत्पाद का निर्यात नही बढ़ा अमूमन आयात अवश्य बढ़ा। अंग्रेज तो कपास बाहर भेजता था- यानि निर्यात करता था। लेकिन सन् 1997 से 2004 के बीच तो भारत में 11 करोड़ कपास गाँठों की आयात हुई। इस दौरान आन्ध्र प्रदेश में तेलगू देशम के श्री चन्द्र बाबू नायडू मुख्यमंत्री थे। उधर केन्द्र में आदरणीय अटल बिहारी वाजपेयी जी की सरकार सत्ता में थी। कपास की इस आयात के परिणामवश आन्ध्र प्रदेश के बाजार में कपास के दाम 2500 रुपया प्रति कुन्तल से 1600-1700 रुपया प्रति कुन्तल पर आ गिरे। उस पर सन् 1997 में आन्ध्र प्रदेश में कपास के उत्पादन में भारी गिरावट भी हुई थी। उत्पादन घटने पर दाम बढ़ते हैं। लेकिन मुक्त अर्थनीति के चलते कपास आयात की गयी और उत्पादन गिरने के साथ दाम भी गिरे। यह आघात असहनीय था। उस वर्ष आन्ध्र प्रदेश के हजारों किसानों ने आत्महत्या का रास्ता चुना। इस दौरान विदर्भ में आत्महत्या टली क्योंकि महाराष्ट्र में कपास एकाधिकार खरीद योजना जारी थी। इस योजना में 500-600 रु0 अग्रिम बोनस के साथ लगभग 1900-2900 रु0 प्रति कुन्तल के दाम किसानों को मिल रहे थे। सरकारी हस्तक्षेप के कारण मुक्त अर्थनीति के परिणामों से बचा जा सका था। लेकिन आगे जाकर एकाधिकार योजना के घाटे की आड़ में सरकार ने कपास खरीद की राशि किसानों को एक वर्ष के विलम्ब से और तीन किश्तों में देना शुरू किया। इसके साथ ही सन् 2003-04 के बाद आत्महत्याओं का दौर भी शुरू हुआ। सन् 2004-05 से सरकार ने योजना में अग्रिम बोनस देना बंद कर दिया। साथ ही व्यापारियों को भी कपास खरीद की अनुमति बहाल कर दी। इसके पश्चात आत्महत्या की घटनाएँ बढ़ती गईं।

शेतकरी संघटना के आन्दोलन में हुआ विश्वासघात, सत्तापरिवर्तन के बाद भी जारी उपेक्षा और पाँचवे वेतन आयोग के लागू होने से बढ़ती ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच की असमानता, आत्महत्या की इन दुःखद घटनाओं का कारण बनीं है। अब तो छठे वेतन आयोग को लागू किया जा चुका है। चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी भी 14000-15000 रु0 मासिक पा रहे हैं। सरकार की मनरेगा योजना में न्यूनतम वेतन प्रतिदिन 100 रु0 है। किसान यह न्यूनतम वेतन दे पाये इसलिए कृषि उत्पाद का दाम बढ़ना आवश्यक है। ठीक यही नहीं होने दिया जाता। असिंचित खेती करनेवाले किसान तो नैसर्गिक प्रकोपों से भी जूझते हैं और बाजार की अनिश्चितताओं से भी। तथाकथित मुक्त व्यवस्था ने शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात और सामाजिक जिम्मेदारियों पर होने वाले खर्च को बहुत बढ़ा दिया है। इसके चलते कर्ज का बोझ और दिवालियापन तो बढ़ना ही है। बेरोजगारी ऊँचाइयाँ छू रही है और दूसरी ओर जवान पीढ़ी खेती से हटना चाहती है। शहरों में भीड़ बढ़ रही है। वहाँ फैलती झोपड़पट्टियाँ नित नये सवाल पैदा कर रहीं हैं। किसानी से मज़दूर हटते जाते हैं और ऐसी स्थिति में खेती का यंत्रिकरण और रासायनीकरण बढ़ रहा है। इसका असर ज़मीन के उपजाऊ स्तर तथा पर्यावरण पर पड़ने लगा है। कुल मिलाकर खेती पर बसर करने की कोशिश मौत को बुलावा देने के बराबर है। एक समय वह था जब खेती छोड़ नौकरी करने पहुँचे लोग भी रिटायर होकर खेती पर लौटना पसंद करते थे। अब तो शायद सिर्फ मंदबुद्धी ही खेती में बने रहते हैं। भारत रत्न डा0 अम्बेडकर के शहर चलो नारे का अर्थ अब समझ में आता है।

इस सबके बावजूद खेती से टला नहीं जा सकता। यह साफ है कि अनाज और पर्यावरण दोनों के लिए खेती अपरिहार्य है। महाराष्ट्र के किसान आन्दोलन में एक लोकप्रिय नारा था : अगर किसान नहीं बोएगा तो दुनिया क्या खायेगी, धतुरा? वाजपेयी सरकार ने 90 डालर (400 रु0) प्रति कुन्तल के हिसाब से गेहूँ निर्यात किया था। लेकिन दो वर्ष पूर्व मनमोहन सिंह सरकार ने 400 डालर (1900 रु0) प्रति कुन्तल की दर से गेहूँ का आयात किया। अन्नदाता किसान का स्थान इस आयात से स्पष्ट होता है।

अल्पकालीन हल किस काम के ?

किसानी और किसान के सवाल सरकार समझती ही नही यह कहना कठिन है। लेकिन राजनेता और राजनैतिक दल हल करने की इच्छा शक्ति निश्चित तौर पर नहीं रखते। आज की राजनीतिक स्थिति किसी एक दल की बपौती नहीं है। केन्द्र में कांग्रेस, अनेक राज्यों में भाजपा, बंगाल-केरल-मिजोरम में मार्क्सवादी दल सत्ता में हैं। फिर भी केन्द्र सरकार की किसान विरोधी नीतियों की खिलाफत राज्य सरकारों की ओर से हुई हो, यह नज़ारा देखने को नहीं मिला। अटल जी जिन 6 वर्षों तक प्रधानमंत्री रहे उनके दौरान कृषि उत्पादों के दाम स्थिर बने रहे- मतलब महँगाई पर लगाम लगी। लेकिन इसी कारणवश किसान मरा यह कैसे नकारा जा सकता है? विश्व बाज़ार में इस दौर में कृषि उत्पाद के दामों में मंदी थी और आयात के बल पर देश के अन्दर दाम स्थिर रखे गये।

आज गेहूँ, चावल, शक्कर और अरहर के दामों में बाज़ार तेज हैं। विरोधी दल कांग्रेस को दोष दे रहे हैं। दामों में तेजी इसलिए है कि कांग्रेस सरकार की नीति किसानों के पक्ष में है, ऐसी कोई बात कतई नहीं है। दाम बढ़ने का कारण यह है कि दुनिया में इन उत्पादों का बाज़ार तेज है, और कम दामों में आयात कर दाम गिराना कम से कम इस समय तो सम्भव नहीं है। एक उदाहरण लें। विश्व बाज़ार में चावल 800 से 1000 डालर प्रति टन अर्थात् 3600 से 4500 रु0 प्रति कुन्तल के भाव से बिक रहा है। भारत में चावल इससे कम दाम पर किसान बेच रहा है। लेकिन सरकार ने चावल की निर्यात पर अभी बंदी लगा रखी है। दूसरा उदाहरण : अरहर स्थानीय बाज़ार में 100 रु0 प्रति किलो तक पहुँच गई थी। पिछले कई वर्ष लगातार दालें आयात कर रहे हैं। म्यामार, ब्रह्मदेश से 400-500 डालर प्रति टन पर आयात होनी थी। दो वर्ष पूर्व ये दाम 1000 डालर प्रति टन तक पहुँच गये। आयात नहीं हो पायी। उधर छठे वेतन आयोग के लागू होते माँग में बढ़त हुई और दाम और चढ़े। सरकार का इसमें कोई हाथ नहीं है! दो वर्ष पूर्व चना दाल अरहर से महँगी थी। अगर अरहर में तेजी में सरकार का कोई हाथ होता तो प्रश्न यह उठता है कि सरकार

... शेष पेज 8 पर

लोकविद्या और सूखी खेती का किसान

सिंचाई के आधुनिक साधनों के बिना वर्षा पर निर्भर खेती करने वाले आज दुनिया को एक नई दिशा दे सकते हैं। उसकी गरीबी, मजबूरी और अशिक्षित स्थिति से नज़र हटाकर यह देखें कि वह अपना जीवन कैसे चलाता है? बाजार की सबसे ज्यादा मार सहते हुये उसके मार्फत आने वाली सभी सुविधाओं से वंचित वह अपनी जिन्दगी अपनी विद्या के बल पर चलाता है। उसकी अपनी विद्या, उस क्षेत्र की लोकविद्या, उसकी एकमात्र पूँजी है और इतनी प्रभावी तो है ही कि तमाम विपरीत परिस्थितियों के बावजूद वह उसे अपनी ज़िन्दगी चलाने का आधार देती है।

आधुनिक उद्योगों और ऊर्जा के अत्यधिक इस्तेमाल के चलते दुनिया आज विनाश के कगार पर खड़ी है। वनों और कृषि योग्य भूमि की लगातार बर्बादी से प्रकृति को ही अप्राकृतिक बना दिया गया है। दुनियाभर में इन परिस्थितियों के खिलाफ आन्दोलन चल रहे हैं। आंदोलनकारियों में विभिन्न मतभेदों के बावजूद समान दृष्टि यह है कि सभी प्रकृति के साथ मैत्रीभाव का विचार रखते हैं। अगर यह विचार कहीं जीया जा रहा है तो असिंचित खेती के इलाकों और समाजों में। प्रकृति के साथ मैत्रीभाव जिस ज्ञान और विद्या का अभिन्न हिस्सा है उसी में मनुष्य का उज्ज्वल भविष्य लिखने की क्षमता हो सकती है। आवश्यक यह है कि बराबरी और मानवता की दृष्टि से काम करने वाले सामाजिक कार्यकर्त्ता अपने सिर पर का मृत बोझ कम करें। आधुनिक शिक्षा, संचार और यातायात की गति, कम्प्यूटर के मायालोक और भूतकाल के किसी कल्पित आदर्श के बोझों से मुक्त होना ज़रूरी है तभी लोकविद्या में निहित संभावनायें और शक्ति नज़र आयेगी।

सम्पादकीय

जमीन के संघर्ष

किसान और राज्यसत्ता के बीच में एक अभूतपूर्व संघर्ष छिड़ा हुआ है। चौड़े-चौड़े और उठे हुये रास्ते बनाने के लिये, अत्याधुनिक और चहारदीवारियों से घिरे हुये सुरक्षित नगर बनाने के लिये, सिर्फ निर्यात के लिये इस देश के कानून से उठकर विशेष आर्थिक क्षेत्र बनाने के लिये, मोटर बनाने के उद्योग के लिये, इस्पात, अल्यूमीनियम और सीमेन्ट के कारखाने डालने के लिये, बिजली बनाने के कारखाने खड़े करने के लिये, तमाम धातुओं के खनिजों की खानें विकसित करने के लिये, शहर के पास शहरवासियों के मनोरंजन के लिये वाटर पार्क इत्यादि बनाने के लिये, शहरवासियों के सीवेज के प्रबन्धन के लिये, इन सभी के लिये किसानों की जमीनें ली जा रही हैं। किसान त्रस्त है। मुआवजे के लालच और जमीन बचाने की सद्‌बुद्धि के बीच वह झूल रहा है। अनेकों स्थानों पर जमीन बचाने के संघर्ष चल रहे हैं। पश्चिम बंगाल के सिंगुर और नन्दीग्राम, उड़ीसा का कलिंगनगर, छत्तीसगढ़ के आदिवासी क्षेत्र, आन्ध्र प्रदेश का सोमापेट क्षेत्र और उत्तर प्रदेश में अलीगढ़ के किसानों के संघर्ष बड़ी प्रसिद्धि पा चुके हैं। इनके अलावा अनेक स्थानों पर विभिन्न उपरोक्त कारणों के लिये भूमि अधिग्रहण के खिलाफ किसानों ने मोर्चेबन्दी की है। आजादी के बाद हिन्दुस्तान की जमीन और अन्नदाता शायद पहली बार इतने बड़े दमन का शिकार हो रहा है। यह तो मीडिया का कमाल है कि किसान के दर्द की कोई भी तस्वीर सही ढंग से पेश नहीं की जा रही है।

यह इतना विस्तृत जमीनों को लूटने का कार्यक्रम आखिरकार किसलिये चलाया जा रहा है? एक नये हिन्दुस्तान का ख़्वाब बेचा जा रहा है, जिसमें 50 बड़े शहर होंगे जो चौड़े-चौड़े उठे हुये रास्तों से जुड़े होंगे, पैसे वाले लोग चहारदीवारियों के अन्दर सुरक्षित चिकने फर्शों वाले ए.सी. मकानों में रहेंगे, बड़े-बड़े मॉल-बाजार होंगे जो पूरी तरह ए.सी. होंगे, मनोंजन के लिये तरह-तरह के सुरक्षित पार्क होंगे, इन लोगों का विदेश जाना-आना आम होगा, कम्प्यूटर और संचार की प्राद्योगिकी के चलते इनके आस-पास गरीब लोगों के फटकने की ज़रूरत नहीं होगी, सारे उद्योग व कृषि इनकी बस्तियों और शहरों से दूर होंगे और इनकी जीवन व्यवस्थाओं की आपूर्ति का काम करेंगे। उच्च शिक्षा के लिये मेडिकल, इंजीनियरिंग, विधि, प्रबन्धन आदि के कुछ 100-200 विशेष कालेज देशभर में बनाये जा रहे हैं जिनमें से पढ़कर निकलने वाले यह नया देश चलायेंगे। यह हिन्दुस्तान दुनिया के नम्बर 1देशों में होगा, शायद पहले 10 में। इसी ख़्वाब को असलियत बनाने का रास्ता किसानों और आदिवासियों की जमीनों में से होकर गुजर रहा है और इसीलिये उनकी जमीनों का छीना जाना यह आज की तारीख का सबसे बड़ा उपक्रम बन गया है। जो भी रास्ते में खड़ा होगा उसे हटा दिया जायेगा। अगर लालच से नहीं मानेगा तो उसे मार दिया जायेगा। मारने के कई तरीके हैं। महँगाई इतनी बढ़ा दो कि भुखमरी से मर जाये, कर्ज के चक्र में ऐसा फाँसों कि आत्महत्या कर ले, स्वास्थ्य सेवाओं को यूँ संगठित करो कि गरीब आदमी कभी स्वस्थ रह ही नहीं पाये। और अगर फिर भी हथियार नहीं डालता तो पुलिस की गोली से उसका अंत कर दो। तो सबसे बड़ा सवाल यह है कि क्या इस देश के किसान और आदिवासी और उन्हें संगठित करने वाली जमातें ऐसा होने देंगी?

किसानों और आदिवासियों को संगठित करने का काम और जमीनों के अधिग्रहण के खिलाफ संघर्ष खड़ा करना बहुत किस्म के लोग कर रहे हैं। थोड़ी बहुत जगहें ऐसी हो सकती हैं जहाँ चुनावी राजनीतिक पार्टियाँ बड़ी भूमिका निभा रही हैं, इन जगहों के संघर्ष विवाद का विषय भी रहे हैं। **किन्तु जमीन बचाने के अधिकांश संघर्ष ऐसे छोटे-बड़े संगठनों और वैचारिक समूहों के हाथ हैं जिनकी ईमानदारी पर संदेह की कोई जगह नहीं है, चाहे दृष्टिकोण व कार्य-पद्धति कितनी ही अलग क्यों न हो।** कुछ बड़े संगठन अवश्य हैं जिन्हें सब जानते हैं, ये हैं—माओवादी कम्युनिस्ट पार्टी, भारतीय किसान यूनियन और जन-आन्दोलनों का राष्ट्रीय समन्वय। इनके दृष्टिकोण अलग-अलग हैं और किसानों व आदिवासियों के बीच दखल के इलाके भी काफी अलग-अलग हैं। किसानों और आदिवासियों को संगठित करने और शोषण व उत्पीड़न के खिलाफ संघर्ष छेड़ने का श्रेय इन तीनों ही संगठनों को जाता है। किन्तु अब प्रश्न यह है कि क्या इन संगठनों की दृष्टि और शक्ति जमीन के सवाल पर पूँजीपतियों, निगमों और राजसत्ता के इस हमले का मुकाबला करने में सक्षम है या नहीं।

यह जमीन का सवाल इतना बड़ा है कि किसान और आदिवासी की जमीन अथवा कृषि और जंगल को बचाने के ख्याल की लड़ाई की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाते। चमकदार हिन्दुस्तान का जो ख़्वाब बेचा जा रहा है उसके विकल्प स्वरूप कैसे हिन्दुस्तान की कल्पना करनी चाहिये यह सोचना अति-महत्त्वपूर्ण है। हम यह नहीं कह रहे हैं कि उपरोक्त नेतृत्व यह सोचता नहीं है बल्कि बात यह है कि इन नेतृत्वों के विचार में भी नई दुनिया की एक ऐसी ही कल्पना है जिसमें किसान और आदिवासी नं॰ 1 का नागरिक नहीं है। उसका शोषण नहीं होना चाहिये, उसे न्याय मिलना चाहिये इत्यादि का अर्थ यह नहीं होता कि दुनिया उसकी होनी चाहिये। ऐसा नहीं है कि दुनिया उसकी होनी चाहिये ऐसा सोचने वाले ही नहीं हैं बल्कि बात यह है कि ऐसे बुनियादी विचार आंदोलनों के नेतृत्वकारी विचार नहीं हैं। ज़रूरत इस वैचारिक बिन्दु पर ध्यान केन्द्रित करने की है।

किसानों और आदिवासियों की दुनिया की अवधारणा बनाने में पहला बिन्दु यह है कि उन्हें ज्ञानी माना जाय। यह माना जाय कि उनका ज्ञान, उनका सोचने का तरीका और उनके मूल्य एक नई दुनिया बनाने का वैचारिक आधार देते हैं। लोकविद्या विद्या का वह विस्तृत सामाजिक रूप है जिसमें साइंस, प्रौद्योगिकी और कम्प्यूटर के आधार पर बनाई जा रही संकुचित और आततायी व्यवस्थाओं का जवाब देने की शक्ति है। किसान आन्दोलन से यह स्वर उभरने की ज़रूरत है कि किसान और गाँव के पास जो ज्ञान है उसके बल पर एक नई दुनिया बनाना ही जवाब है। नर्मदा बचाओ आंदोलन से यह आवाज आनी चाहिये कि आदिवासी का ज्ञान किसी से कम नहीं। माओवादी कम्युनिस्ट पार्टी से भी ये संकेत मिलने चाहिये कि वे यूरोप और चीन के संघर्षों की सीख से आगे बढ़कर उस दुनिया की कल्पना के लिये खुले हैं जिसमें किसान और आदिवासी का ज्ञान विश्वविद्यालय के ज्ञान से कमतर नहीं माना जाता। लोकविद्या को ज्ञान का बुनियादी, गतिशील और अपने को रोज नया करने वाला मानना मनुष्य और उसकी क्षमताओं में आस्था की प्रथम शर्त है। यह आस्था स्व-समीक्षा के मज़बूत आधार पर खड़ी होती है। लोकविद्या में ऐसी ही आस्था जमीन के सवाल के साथ खड़ी हुई चुनौती का जवाब दे पाने की अनिवार्य शर्त है।

गाँव, ग्रामजन व पंचायत

पंचायत का चुनाव नजदीक आ रहा है। सत्ता का विकेन्द्रीकरण करने के उद्देश्य से पंचायतीराज अधिनियम बनाया गया है। जिला पंचायत, क्षेत्र पंचायत व ग्राम पंचायत वाली त्रिस्तरीय पंचायत व्यवस्था आम आदमी के लिए कितनी प्रासंगिक है, इसपर विचार करना जरूरी है।

गाँव में रहने वाले किसान, मजदूर व समस्त ग्रामीण जन के हित के लिए चुनाव के मार्फत पंचायतों का गठन किया जाता है। अभी तक विकास के नाम पर ये पंचायतें सड़क, खड़ंजा, आवास, शौचालय इत्यादि बनवाने का काम करती चली आ रही हैं। इन सारे कार्यों को गाँव के विकास का कार्य कहा जा सकता है। गौरतलब है कि लखनऊ में बनने वाली योजना व सम्बन्धित योजनाओं का बजट गाँवों में दिशा निर्देश के साथ आता है। किस योजना पर कितना खर्च करना है, कौन सा कार्य करवाना है, कौन सा काम नहीं करवाना है, उसका दिशा निर्देश होता है। गाँव पंचायत अपनी जरूरत और अपनी मर्जी के अनुसार कुछ नहीं कर सकती।

अब सवाल यह उठता है कि सभी ग्राम पंचायतों की एक साथ क्या सिर्फ एक ही किस्म के कार्य करवाने की आवश्यकताएं होती हैं। अब हम गाँव के कुछ मौलिक जरूरतों की बात करते हैं। गाँव किसानों, मजदूरों, कारीगरों तथा अन्य सेवा कार्य करने वाले ग्रामीणों से बनता है। किसान व मजदूर खेतों में कार्य करते हैं। कारीगर लोहा, लकड़ी, मिट्टी, पत्थर, प्लास्टिक इत्यादि से तरह-तरह की चीजें बनातें हैं। एक तरह से देखा जाय तो समस्त ग्रामीण उत्पादन का कार्य करते हैं। खेती-बारी व उत्पादन कार्य को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए जरूरी बिजली व्यवस्था, ट्रांस्फार्मर समस्या, नलकूप मरम्मत, नहर को सुचारु रूप से चलवाने, खाद व बीज की व्यवस्था इत्यादि कार्य में पंचायतों की कोई भी पहल देखने को नहीं मिलती।

अब हम सभी को यह विचार करना है कि ग्राम पंचायतें सड़क, नाली, खड़ंजा, शौचालय, आवास इत्यादि के कार्य तक ही सिमटी हुई हैं और गाँव वासियों की प्राथमिकता के आधार पर जरूरी है सिंचाई, बिजली, खाद, बीज, उपज का उचित दाम इत्यादि। एक महत्वपूर्ण बात हमें और समझ लेना चाहिए कि सरकारी बजट तो दोनों कार्यों के लिए आते हैं। सड़क, खड़ंजा इत्यादि के लिए सीधे ग्राम पंचायतों के पास बजट आता है। सिंचाई, बिजली इत्यादि के लिए विभागों में बजट आता है। चूँकि ये तमाम विभाग पंचायतों के अधिकार क्षेत्र से बाहर हैं, अतः सीधे तौर पर इनमें हस्तक्षेप अथवा नियंत्रण पंचायतें नहीं रख पातीं। ऐसे में तर्क संगत व न्याय संगत तो यही है कि गाँव व ग्रामीणों से जुड़े ये तमाम विभाग पंचायतों के अधीन होने चाहिए।

गाँव और ग्रामीणों से जुड़े विभागों को पंचायतों के अधीन करना तो सरकार की मंशा व मर्जी पर है परन्तु क्या पंचायतें उत्पादन कार्य के लिए आवश्यक सिंचाई, बिजली व्यवस्था के ऊपर संगठित होकर अपना दबाव भी नहीं डाल सकतीं। मेरा अपना मानना है कि किसी भी समस्या का समाधान करवाने के लिए यदि ग्राम प्रधान पचीस-पचास ग्रामीणों के साथ सम्बन्धित विभाग के कार्यालय पर जाकर अधिकारियों से ठीक से बात कर लें तो अधिकारीगण समस्या निवारण के लिए बाध्य होंगे। पूर्व की पंचायतों में जबकि सरकारी बजट नाम मात्र का आता था, तब अधिकांश ग्राम प्रधान इस तरह के जनहितकारी अभियान चलाते थे। आज जबकि गाँव के विकास के नाम पर बड़ा बजट आ रहा है जिसे अधिकारी व ब्लाक प्रमुख से लेकर ग्राम प्रधान घोंट जा रहे हैं, ऐसे में यह मात्र कल्पना ही की जा सकती है कि ग्राम प्रधान ग्रामीणों के साथ में खड़ा होकर उनके हित के किसी भी आन्दोलन का नेतृत्व करेगा। पंचायत के नाम पर वे ही कार्य किये जा रहे हैं जो पंचायत राज के लागू न रहने पर किये जाते रहे। ऐसी किसी पंचायत की कल्पना करना भी कठिन है जिसमें पंचायत अपने सबसे महत्वपूर्ण विषय पर कोई निर्णय ले सके और कोई योजना बनाकर उसे क्रियान्वित भी कर सके।

यह जिम्मेदारी अब आम ग्रामीणों के कन्धे पर आ चुकी है। यह समय आम आदमी के जागरूक व सक्रिय होने का है तभी जाकर आम आदमी, मेहनतकश मजदूर, किसान व समस्त ग्रामीण जन के हितों की रक्षा की जा सकती है।

– लक्ष्मण प्रसाद मौर्य
जिलाध्यक्ष भारतीय किसान यूनियन, वाराणसी

लोकविद्या और मौलिक अधिकार का कानून

ज्ञान और शिक्षा के क्षेत्र में हो रहे बड़े-बड़े परिवर्तनों और किसानों, कारीगरों और आदिवासियों की उजड़ती दुनिया के बीच का सम्बन्ध पहचानना जरूरी है। विश्वविद्यालयों और शोध संस्थानों का ज्ञान इन लोगों का कोई भला कर सकता है यह सोच तो कभी की खाली हो चुकी है। आज यह तर्क ज़रूर दिया जा सकता है कि यह ज्ञान इन लोगों के उजड़ने के पक्के कारकों में से एक है। फिर किस ज्ञान के सहारे किसानों, कारीगरों और आदिवासियों की ज़िन्दगी बचाई और बसाई जा सकती है? जाहिर है उनके अपने ज्ञान, लोकविद्या में ही उनका सहारा हो सकता है, जो आज भी है। ज़रूरत एक सक्षम कानून की है जो उनके अपनी विद्या के सहारे जीने का अधिकार सुरक्षित करता हो।

अपने ज्ञान के बल पर गुजर-बसर करने का कानूनी अधिकार, मौलिक संवैधानिक अधिकार, सरकारी एवं सार्वजनिक नीतियों व उद्यमों के अन्तर्गत ढाँचागत एवं अन्य तात्कालिक सुविधाओं में वरीयता का स्थान इत्यादि के नजरिये से राज्य एवं केन्द्र की विधायिकाओं यानि विधानसभाओं और राष्ट्रीय संसद द्वारा कानून बनाया जाना चाहिये। ज्ञान आधारित समाज सभी के हित का बने इसके लिये यह एक अनिवार्य कदम है। किसानों की जमीनों का न छीना जाना, आदिवासियों का वन क्षेत्र में अधिकार पुनर्स्थापित होना, छोटे धंधों का न उजाड़ा जाना, कारीगर समुदायों के कार्यों का लाभदायक बना रहना, खाना और कपड़ा की प्रक्रियाओं के बड़े हिस्सों का स्त्रियों के लिये आरक्षित होना, यह सब मोटे तौर पर इस कानून की परिधि में आना चाहिये।

इस कानून का दार्शनिक आधार इस विचार में है कि समाज में प्रचलित सभी ज्ञान की धारायें एवं परम्परायें आपस में बराबरी की हकदार हैं, समाज में बराबर के सम्मान और बराबर के स्थान की हकदार हैं। ज्ञान की धाराओं की आपसी बराबरी में ही मनुष्य और मनुष्य के बीच बराबरी की बुनियाद है। बढ़ती गैर-बराबरी को चुनौती देने के विचार व कार्य का सैद्धान्तिक स्रोत भी अंततोगत्वा इसी विचार में बनता है। प्रकृति, भूगोल, सामाजिक व्यवस्थाओं, वैचारिक परम्पराओं और तकनीक के प्रकारों की विविधता में सभी के लिये सम्मानजनक एकता का आधार इसी में हो सकता है कि सभी के ज्ञान समाज में बराबर का स्थान पायें।

समाज व ज्ञान के प्रति यह दृष्टि लोकविद्या की दृष्टि है। यह साइंस, राजसत्ता और वैश्विक अर्थव्यवस्था की दृष्टि नहीं है। जब तक ज्ञान के प्राथमिक और कसौटीपरक रूप को लोगों के बीच बसे होने की अनिवार्यता से नहीं बाँधा जाता तब तक यह बार-बार लोकहित का तिरस्कार करके समाज में गैर-बराबरी और शोषण को जन्म देने और बनाकर रखने का सैद्धान्तिक और दार्शनिक मूल्य बन जाता है। लोकविद्या को किन्हीं ज्ञान परम्पराओं के अवशेष के रूप में न देखकर, ज्ञान के उस गतिशील प्रवाह के रूप में देखा जाना चाहिये जो नित-नवीन होता है, जिसके मूल्य, तर्क की विधायें, जानकारियों के भण्डार सभी सामान्य जीवन के साथ एका में सतत परिवर्तनशील होते हैं। इसी लोकविद्या से न्याय और परिवर्तन के अक्षय संदेश प्रसारित होते हैं।

नागरिक अधिकार संगठनों, किसानों, कारीगरों, आदिवासियों, छोटे व्यवसायियों और महिलाओं के संगठनों तथा इस विषय में रुचि लेने वाले लोकोन्मुख विचार के विधि विशेषज्ञों से इस विषय पर विद्या आश्रम, सारनाथ, वाराणसी से वार्त्ता चलाई जा रही है।

लोकविद्या पंचायत के पाठकों से

1. **हर 50 रुपये पर 12 अंक दिये जायेंगे।**
2. **पंजीकरण की अर्जी दे दी गयी है। प्रक्रिया पूरी होने पर हर माह अंक निकाला जायेगा।**
3. **पंजीकरण तक हर दो माह में एक अंक सीमित प्रसार के लिए निकाला जा रहा है।**
4. **अपने विचार अवश्य भेजें।**
5. **अपने क्षेत्र के लोकविद्याधरों की समस्यायें, संघर्ष एवं संगठनों के बारे में अवश्य लिख भेजें।**

सम्पर्क फोन : 9452824380

लोकविद्या और मनरेगा

– कृष्णराजुलु नायडू

लोकविद्या के बल पर जीने वालों की स्थिति

आज़ादी के बाद भारत के गाँवों में हमने आर्थिक गतिविधि को लगातार घटते देखा है जिसके चलते गरीबी बढ़ी है और भ्रम टूटे हैं। किसानों ने फसल के जायज़ दामों के लिए लगातार आन्दोलन किये हैं, कारीगरों के काम छूट गये हैं, आदिवासियों को उनके जीविका क्षेत्र से लगातार बाहर खदेड़ा गया है और पूरे लोकविद्याधर समाज को बिखराव की ओर धकेल दिया गया है जिससे वह हतोत्साहित हो गया है। स्थिति इतनी खराब हो चुकी है कि पिछले दो दशकों में महाराष्ट्र और आन्ध्रप्रदेश में 40,000 से ज़्यादा किसानों और बुनकरों ने हताश होकर आत्महत्या कर ली है। हालाँकि हम जानते हैं कि लोकविद्याधर समाज के ज़्यादातर लोग अब भी लोकविद्या के बल पर अपनी जीविका चलाते हैं और इसे जारी रखना चाहते हैं। लोकविद्याधर समाज के बहुत से नौजवान पिछले कई दशकों से शहरों की ओर जा रहे हैं और नये ज्ञान और हुनर हासिल करके शहरी समाज के विभिन्न स्तरों पर अपनी जगह बना रहे हैं। इस नये ज्ञान को प्राप्त करने की प्रक्रिया में वे अपनी लोकविद्या से धीरे-धीरे हट रहे हैं। फिर भी उन हजारों-लाखों लोगों का क्या होगा जो लोकविद्या के बल पर जीने की चाहत रखते हैं?

भारतीय सरकारें देश की आबादी के एक बहुत छोटे हिस्से को ही रोज़गार के अवसर देने में समर्थ हो पाती हैं जिससे वे एक सम्मानपूर्ण जीवन जी सकें (जैसे वे लोग जो शहरों में रहकर बड़े उद्योग व सेवाओं में रोज़गार पाते हैं)। देश की सरकारों ने अपनी नीतियों में बेरोज़गारी और गरीबी की समस्याओं को हल करने के लिए एक एकांगी आधुनिक दृष्टिकोण अपनाया है, जिससे लोकविद्याधर समाज का आत्मसम्मान ध्वस्त हो गया है और वह क्षीण हो गया है।

मनरेगा और लोकविद्याधर समाज

अब कुछ समय से देश के सभी हिस्सों में मनरेगा योजना लागू है। इसकी पूर्ववर्ती योजना, रोज़गार गारंटी योजना, जो महाराष्ट्र में, मुख्य रूप से विदर्भ में जहाँ बड़े पैमाने पर किसान आत्महत्या कर रहे थे, तकरीबन एक दशक पूर्व लागू की गयी थी। मनरेगा के तहत, गरीबी रेखा के नीचे जी रहे परिवारों में से कम से कम एक व्यक्ति को साल में सौ दिन का रोज़गार, सौ रुपये प्रतिदिन की मजदूरी पर दिया जाता है। ग्राम प्रधान योग्य व्यक्तियों की सूची बनाता है, उन्हें काम देता है और मजदूरी का भुगतान भी करता है। हालाँकि इस पूरी प्रक्रिया में बहुत भ्रष्टाचार है, लेकिन लोग काम करते हैं क्योंकि उनके पास जीविका का कोई दूसरा साधन उपलब्ध नहीं है। मनरेगा के अन्तर्गत दिये जाने वाले कामों में सड़क बनाना, तालाब की सफाई करना तालाब खुदवाना जैसे सामाजिक आवश्यकता के सरकारी काम हैं। ये सभी काम अकुशल श्रम के हैं और इसमें काम करने वालों को महज मजदूर माना जाता है। इस परियोजना ने जहाँ बहुत से भूमिहीन खेतीहर श्रमिकों को कृषि कार्यों से विरत किया है, वहीं हुनरमंद किसानों, बुनकरों, लोहारों, दर्जियों, बढ़इयों आदि को अकुशल मज़दूर में तब्दील कर दिया है। इस तरह लोकविद्या, जो इन लोगों के जीवन का आधार थी, उसे निरर्थक बना दिया है। इस स्थिति के कारण, इन लोगों का लोकविद्या पर से विश्वास डिग गया है और उन्हें सन्देह है कि वे कभी इसके बल पर एक सम्मानित जीवन जी सकेंगे।

हालाँकि इस परियोजना के हाल के मूल्यांकनों से ज़ाहिर है कि इस योजना के क्रियान्वयन में हो रहे अनियन्त्रित भ्रष्टाचार के बावजूद असल में इस्तेमाल की जाने वाली धनराशि में स्पष्ट कमी आई है और इसका कारण यह है कि खेतीहर मज़दूर के अलावा ज्यादा लोग इसके लिए पंजीकरण नहीं कर रहे हैं। दूसरे शब्दों में समाज के अन्य घटकों के लोग जैसे कारीगर आदि मनरेगा में काम करने से कतराते हैं। कारीगर समाज के ज्यादा से ज्यादा लोग शहरों की ओर रुख कर रहे हैं- जहाँ वे झोपड़पट्टी में रहकर निर्माण कार्यों में मज़दूरी करते हैं। यदि हुनरमंद व कम हुनरमंद कार्यों को भी मनरेगा के तहत मान्यता दी जाय और ऐसे कामों को योजना में सम्मिलित किया जाय तो आबादी के एक बहुत बड़े हिस्से को इससे लाभ मिलेगा। इस तरह ऐसे हुनरमंद श्रम को सामाजिक ज़रूरत के उत्पादन, वितरण और सेवाओं में लगाया जा सकता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि ऐसा करने से लोकविद्या गतिशील होगी और लोगों का यह विश्वास दृढ़ होने में मदद मिलेगी कि लोकविद्या के बल पर जीविका चलाना संभव है।

इसलिए हमारी माँग यह होनी चाहिए कि अकुशल श्रम के अलावा अन्य हुनरमंद कार्यों को भी मनरेगा में शामिल किया जाय। हाल ही में आन्ध्रप्रदेश की एक संस्था जो परम्परागत लोक-कलाओं से सम्बन्धित है, ने यह माँग सामने लायी है कि कलाकारों को भी मनरेगा के अन्तर्गत सौ दिन के लिए सौ रुपये प्रतिदिन के हिसाब से भुगतान किया जाय। ऐसी माँग से कारीगरों, आदिवासियों आदि का शहरों की ओर पलायन रूकेगा और उन्हें शहर की झोपड़पट्टी में रहने की तुलना में एक बेहतर व सम्मानित जीवन मिलेगा। दूसरा नतीजा यह होगा कि इनके बच्चों को शहरी बस्तियों में अकुशल कारीगर बनने के बजाय लोकविद्या को सीखने और आगे बढ़ाने का प्रोत्साहन प्राप्त होगा। इसलिए नारा यह होना चाहिए - लोकविद्या के अनुरूप हर एक को काम और हर एक को जायज़ दाम। महात्मा गाँधी (जो लोकविद्याधर समाज के मसीहा माने गये) के नाम पर चल रही इस योजना को तभी सही दिशा मिल सकेगी।

आन्ध्र प्रदेश में लोकविद्या से जुड़ी गतिविधियाँ - एक नज़र

– नरेश कुमार शर्मा

कला कौशल के विषय में आंध्र प्रदेश एक अत्यन्त धनी क्षेत्र रहा है। यहाँ के चप्पे-चप्पे में अनेक प्रकार की कारीगरियाँ बसती हैं। आदिलाबाद से लेकर चित्तूर तक और विजयनगरम् से लेकर अनंतपुर तक हरेक हिस्से अपने- अपने क्षेत्र की विशेष विद्या विधाओं से लेकर सामान्य जीवन पालन के लिए आवश्यक ज्ञान के स्रोत हैं। जहाँ एक तरफ इसे धान के भंडार के रूप में जाना जाता रहा है, वहीं इसने कारीगरी में भी विशेष कौशल का परिचय दिया है। हालांकि कोहिनूर हीरे का स्रोत होने और मोतियों के काम का गढ़ होने का ज्यादा नाम है, परन्तु यहाँ हथकरघा वस्त्र के अनेक प्रकार- जो कि अपने-अपने नाम से प्रसिद्ध हो चले हैं- तथा लकड़ी, लोहा, धातु, मिट्टी, खिलौने आदि की विधाओं पर महारत हासिल है। विद्या की इस समृद्ध धरोहर का मालिक होने के बावजूद यहाँ का किसान और कारीगर जीवन यापन में समृद्धि से वंचित है। इस परिस्थिति को समझने और इसका प्रतिकार करने की समय-समय पर कोशिशें होती रही हैं। इस स्थिति और इन समस्याओं को लोकविद्या के परिप्रेक्ष्य में समझना इन्हीं कोशिशों का एक अंग है।

इस दिशा में एक बड़ा कार्यक्रम जून 1999 में चीराला नगर में **लोकविद्या आंदोलन सदस्सु** के नाम से आयोजित किया गया। लोकविद्या के नाम से और इस परिप्रेक्ष्य में आम लोगों की स्थिति और समस्या को नये सिरे से समझने की जो यह शुरूआत हुई, उसका तार इसके पहले हुए पारम्परिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी के तीन महाधिवेशनों से जुड़ा था। विशेष रूप से चेन्नई और वाराणसी के इन राष्ट्रीय जलसों में आन्ध्र प्रदेश से बड़ी संख्या में कारीगर, कार्यकर्ता, बुद्धिजीवी, सहयोगी आदि ने हिस्सा लिया। वाराणसी में हुए जलसे को **'लोकविद्या महाधिवेशन'** का नाम दिया गया था। इसमें शामिल हुए आन्ध्र प्रदेश के भागीदारों को **'लोक विद्या'** नाम में एक शक्ति का अनुभव हुआ, एक आत्मविश्वास की लौ दिखी। इसी वाराणसी अधिवेशन में अनेक क्षेत्रीय अधिवेशन करने का फैसला हुआ, जिनमें चीराला में हुआ आंध्र प्रदेश का अधिवेशन अपने आप में एक पहला प्रयास था।

चीराला के इस जलसे में आंध्र प्रदेश के सभी हिस्सों से लगभग 400-500 लोकविद्या में लगे लोगों ने हिस्सा लिया- इसमें लगभग 40 विभिन्न लोकविद्या विधाओं से जुड़े लोग थे। इनमें कपड़ा , चमड़ा, धातु, पत्थर, मिट्टी, लकड़ी आदि से जुड़े कारीगर तो थे ही , साथ ही नमक बनाने वाले, ताड़ी के व्यवसाय से जुड़े, भेड़, बकरी के पालनहार आदि अनेक इन विद्याओं से जुड़े लोग भी थे। इतनी विभिन्न कारीगरियों के लोग एक साथ एक मंच पर आकर अपनी समस्याओं और सम्भावनाओं पर एक दूसरे के साथ विचार-विमर्श करें, ऐसा पहले नहीं देखा गया। इन सारी विधाओं में सम्मिलित रूप से देखें तो एक खुशहाल जीवन के लगभग सभी अवयव मौजूद हैं। तो फिर विपन्नता क्यों- इस पर बात आगे चलाने की शुरूआत इस जलस से हो गयी। इसमें लगभग 100 बुद्धिजीवी सहयोगियों ने भी हिस्सा लिया।

इसके बाद **'लोक विद्या वेदिका'** के अन्तर्गत समय-समय पर गतिविधियाँ आयोजित करने के प्रयास होते रहे हैं। लोकविद्या की अवधारणा की इस नाम से पहुँच अभी बहुत गहरे नहीं पहुँची है, फिर भी जिन कारीगर लोगों के बीच यह बातें चली हैं उन्हें 'लोकविद्या' के नाम में अपना आत्म सम्मान और आत्मविश्वास दिखता है। लोकविद्या वेदिका ने पिछले वर्षों इस विषय पर चंद चर्चायें आयोजित की हैं और विभिन्न कारीगरों और उनके समाजों को एक साथ लाने के प्रयास किये हैं। इस कार्य में सर्वाधिक योगदान चीराला के कर्मठ सपूत श्री माचर्ला मोहन राव का रहा है। इतने सब प्रयासों के बावजूद यह कार्य अभी भी आरम्भिक अवस्था में ही है। हथकरघा उद्योग से जुड़े लोग अवश्य बहुलता से कार्यक्रमों में आगे आते रहे हैं, परन्तु विभिन्न कारीगर समुदायों को एक साथ लाना और विचार, विमर्श, या आंदोलन चलाना अभी तक एक मुश्किल कार्य रहा है।

लोकविद्या की चर्चा को एक व्यापक स्तर पर जोड़ने के लिए सेमिनार, सम्मेलन आदि के आयोजन और भागीदारी के प्रयास भी हुए हैं। हैदराबाद में 2003 में हुए पहले एशिया सोशल फोरम में 'लोकविद्या और सामान्य जीवन' पर एक गोष्ठी का आयोजन किया गया। समाज में ज्ञान पर वार्तालाप विषय को लेकर छिट-पुट चर्चायें हुईं हैं। आन्ध्र विश्वविद्यालय में श्री.टी. सुधाकर रेड्डी की पहल पर कारीगरी के विषयों को विश्वविद्यालय में लाने के ऊपर दो सघन गोष्ठियाँ आयोजित की जा चुकी हैं। ये गोष्ठियाँ गांधी जी से प्रेरित 'नई तालीम' परियोजना के तहत आयोजित की गयीं और इनमें करीगरी के ज्ञानी लोग, कलाकार,वैज्ञानिकों और समाज शास्त्रियों ने हिस्सा लिया। कारीगरों की विद्या और उसके विद्याधरों को सामाजिक मान्यता प्राप्त होने की दिशा में यह एक महत्वपूर्ण कदम है। इसको मूर्त रूप देने के लिए अभी काफी कार्य की आवश्यकता होगी— हालांकि एक विश्वविद्यालय में यह खुलापन होना एक शुभ संकेत है और शायद आने वाली सोच का एक पूर्व संकेत भी।

पृथक तेलंगाना के समर्थन में मार्च 2010 में उस्मानिया विश्वविद्यालय के प्रो.बी.कृष्णराजुलु ने श्रीकृष्ण आयोग को पत्र लिखकर लोकविद्या दृष्टिकोण से तेलंगाना का अलग राज्य बनना कैसे लोकहित में है इसके तर्क प्रस्तुत किये।

... शेष पेज 7 पर

बलियारी विस्फोट के शहीदों की पुण्य स्मृति

सिंगरौली में बिजली पर नये चिंतन की शुरुआत

– मुकेश येंगल

ऊर्जा उत्पादन के क्षेत्र में देश का सबसे बड़ा केन्द्र सिंगरौली है। सामाजिक, मानवीय एवं पर्यावरणीय मुद्दों पर सर्वाधिक विस्फोटक केन्द्र बनते जा रहे इस लगभग 400 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र की त्रासदी भयावह हादसे की ओर बढ़ती जा रही है। बढ़ती विनाशक गतिविधियों पर गंभीर चिंतन किये बगैर विकास की अंधी दौड़ में मानवीय संवेदना दफन हो रही है और अक्षम्य पर्यावरणीय नुकसान का खतरा दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा है। इन मुद्दों पर सामाजिक संगठनों के साथ विकास के अगुआ, परियोजनाओं के प्रबन्धनकर्ता, शासन-प्रशासन के प्रतिनिधि, क्षेत्रवासी एवं मूल आदिवासियों को भी एक मंच पर गहन चिंतन की आवश्यकता है।

सिंगरौली परिक्षेत्र में उद्योग जनित खतरे विषयान्तर्गत सृजन लोकहित समिति, कोयला श्रमिक सभा और विद्युत मजदूर संगठन उ0 प्र0 के आवाहन पर 5 जुलाई को एक सभा में स्थानीय स्तर से लेकर मध्य प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश के वरिष्ठ चिंतनशीलों ने राज्य एवं केन्द्र सरकार को आगाह किया कि समस्याओं से मुँह चुराने की बजाय इसके समाधान के लिए सबके साथ सार्थक रचनात्मक पहल करनी चाहिए। सभा के मुख्य अतिथि विद्या आश्रम वाराणसी के सुनील सहस्त्रबुद्धे रहे। जबकि कार्यक्रम की अध्यक्षता डा0 चित्रा वाराणसी ने की।

गत 5 जुलाई 2009 को बलियारी विस्फोट की हृदय विदारक घटना की प्रथम पुण्य स्मृति में आयोजित सभा की शुरूआत प्रो0 विनय कुमार के चित्र पर पुष्पांजलि के साथ की गई। संयोजक एवं समाजवादी विचारक अवधेश जी ने बलियारी विस्फोट के समय का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करते हुए मानवीय संवेदनाओं में गिरावट की बात की। पत्रकार रोहित गुप्ता ने सिंगरौली क्षेत्र के भौतिक एवं पर्यावरणीय नुकसान की विस्तृत जानकारी दी एवं भविष्य में क्षेत्र के विकास के प्रारूप पर जोर देते हुए सुझाव की बात की। सामाजिक कार्यकर्ता कालिका प्रसाद ने कहा कि विकास के नाम पर विनाश की अनदेखी उचित नही है। बड़ी औद्योगिक इकाईयों एवं शासन की असंवेदनशीलता अत्यधिक चिंतनीय है। रिएक्ट संस्था के अध्यक्ष व पत्रकार डा0 मुकेश येंगल ने कहा कि विकास समाज व देश के लिए आवश्यक है लेकिन विनाश की अनदेखी नही होनी चाहिए। उन्होंने कहा कि पानी के प्रबन्धन के विशेष प्रयास किये जाने चाहिए। शिक्षाविद राजेन्द्र त्रिपाठी ने कहा कि विकास प्रकृति का नियम है लेकिन प्रकृति को नुकसान पहुँचाये बगैर। उन्होंने हर व्यक्ति के लिए अधिकारों के साथ कर्तव्य की बात कही। विद्युत मजदूर संगठन अनपरा के अध्यक्ष श्याम किशोर जायसवाल ने कहा कि आधुनिक प्रौद्योगिकी ने दोहन की बजाय शोषण को बढ़ाया है। इससे खतरे भी बढ़े हैं। यहाँ परियोजनाओं में सैकड़ों लोग मर रहे हैं, जिनका कोई हिसाब ही नही है। यह घोर असंवेदनशीलता है। उन्होंने कहा कि उद्योगजनित खतरे लगातार बढ़ते जा रहे हैं। वर्तमान समय में विस्फोटक मुहाने पर है सिंगरौली क्षेत्र।

सामाजिक आन्दोलन से जुड़े विद्या आश्रम वाराणसी के सुनील सहस्त्रबुद्धे ने कहा कि भूखमरी से मौत का जो रिश्ता कुपोषण से है वही कोयलांचल में हादसे और मौत का रिश्ता प्रदूषण, पानी एवं अन्य बातों से है। विस्थापितों के मामले को जिन्दगी के विस्थापन से जोड़ते हुए उन्होंने कहा कि यह काफी गंभीर मसला है। हम कौन सा देश बना रहे हैं जहाँ हवा, पानी सब कुछ खतरे में है, उत्पादन के ज्यादातर हिस्से से देश में अरबपति लोगों को ही लाभ हो रहा है। उन्होंने कहा कि इतने विद्युत उत्पादन के बाद भी ढंग से बिजली नही मिलती। किसान, बुनकर और आदिवासी के बच्चों की शिक्षा कैसे हो? उन्होंने आगे कहा कि प्रत्येक व्यक्ति व परिवार को बिजली बराबरी से मिलनी चाहिए। किसी के घर ए.सी. चले और वहीं दूसरी ओर किसी को बिजली बिल्कुल नही मिलती यह ज्यादती है। वितरण का सवाल मौलिक है इसे नीति निर्धारण का आधार होना चाहिये और इस पर चर्चा अत्यावश्यक है। पूँजीपति यह तय नहीं करते कि देश किधर जाएगा, वे केवल स्वयं का विकास एवं अपनी दिशा तय करते हैं। उन्होंने बिजली ज्ञान पंचायत शुरू करने पर जोर दिया। डा0 चित्रा सहस्त्रबुद्धे ने कहा कि लापरवाह सोच के चलते मजदूरों की बलि चढ़ाई जा रही है। किसान, मजदूर, कारीगरों के हितों में इन विनाशकारी उद्योगों के ज्ञान पर सवाल खड़ा करना होगा।

इस कार्यक्रम में मुख्य रूप से हिन्द मजदूर सभा के युधिष्ठिर सिंह, बद्री नारायण, मो0 सहीम, सुरेश प्रसाद अग्निहोत्री, रामपाल सिंह, सृजन लोकहित समिति के विनोद कुमार, सामाजिक कार्यकर्ता गौरी शंकर दुबे, विद्या आश्रम वाराणसी के दिलीप कुमार, प्राचार्य आर0 बी0 सिंह, इरफान अहमद, पत्रकार रामयश सिंह आदि ने हिस्सा लिया। हिन्द मजदूर सभा के संयुक्त महामंत्री अशोक कुमार पाण्डेय ने आये हुए अतिथियों का धन्यवाद ज्ञापन किया। सभा के अन्त में बलियारी हादसे के शिकार लोगों के स्मृति में दो मिनट का मौन रखकर श्रद्धांजलि दी गयी।

महँगाई समाज में गैर-बराबरी बढ़ाती है

– अमित बसोले

पिछले कुछ सालों से दाल, चावल, चीनी और दूध जैसी जीवनावश्यक वस्तुओं की कीमतों में तेजी से बढ़ोत्तरी की वजह से देश की आम जनता बहुत परेशान है। महँगाई के इर्द-गिर्द विपक्ष ने अपनी राजनीति खड़ी करने की काफी कोशिश की है। महँगाई के मुद्दे को लेकर यू पी ए सरकार के खिलाफ वाम दल व भारतीय जनता पार्टी एक साथ मंच पर खड़े दिखाई पड़े। आखिर महँगाई क्या है और समाज के विभिन्न वर्गों पर इसका क्या असर पड़ता है? आइए इस पर एक नज़र डालें।

महँगाई यानि बाज़ार में बिकने वाली चीजों के दाम बढना। इस वृद्धि के कई कारण हो सकते हैं। जब पेट्रोल/डीजल जैसी वस्तु महँगी होती है तो इसका परिणाम बाज़ार की लगभग हर वस्तु पर पड़ता है क्योंकि इसका उपयोग हर चीज़ के वितरण में होता है, और ईंधन के रूप में यह कई वस्तुओं के निर्माण में भी आवश्यक होता है। महँगाई की एक और आम वजह है। जब आर्थिक विकास बहुत तेज गति से होता है, तो समाज का वह तबका जो विकास का लाभ उठा रहा है, ज्यादा पैसा खर्च करने की क्षमता पा जाता है। इस तबके की बढ़ती हुई माँग अगर आपूर्ति से ज़्यादा हुई तो दाम बढ़ते हैं और महँगाई का दौर शुरू होता है। इसके अलावा किसी विशेष वस्तु के दाम में बढोत्तरी की और भी वजहें हो सकती हैं। जैसे खाद्य वस्तुओं का ही उदाहरण ले लीजिए। इसके पीछे सरकार की नीति और शेयर बाज़ार की सट्टेबाजी का भी हाथ था। सरकार ने आर्थिक उदारीकरण के नाम पर बहुराष्ट्रीय और अन्य बड़े निगमों को स्टॉक मार्केट पर जीवनावश्यक वस्तुओं में व्यापार करने की छूट दे दी और इस सट्टेबाजी का नतीजा सामने है।

महँगाई के सरकारी आंकड़े पूरा सच नहीं बताते क्योंकि यह आंकड़े कई वस्तुओं की औसत कीमत में वृद्धि को दर्शाते हैं, और यह बात छुपाते हैं कि जीवनाश्यक वस्तुओं की कीमतें अन्य कीमतों के मुकाबले बहुत तेज़ी से बढ़ी हैं। उदाहरण के तौर पर पिछले साल सरकारी आंकड़ों के अनुसार महँगाई केवल 3% थी जबकि उसी दौरान खाद्य पदार्थों के भाव 20% बढ़े और सबसे महत्वपूर्ण दाम, श्रम का दाम यानि आय या मजदूरी, नहीं बढ़ी। अगर हर चीज़ के दाम में एक जैसे वृद्धि होती है, तो इसका जीवन स्तर पर कोई खास असर नही होता। यानि अगर आटे-दाल के भाव के साथ-साथ मजदूरी या वेतन भी उतनी ही तेजी से बढ़े तो इसका कोई परिणाम नहीं होगा। दाल का भाव दोगुना हुआ और साथ ही साथ मजदूरी भी दोगुनी हुई, तो कोई परेशानी की बात नही। लेकिन ऐसा नही होता। हमारे देश की अधिकांश जनता, जो लोकविद्याधर हैं, फिर वह किसान हो, कारीगर हो, छोटे धंधे वाले हों, इनकी आय सरकारी या अन्य संगठित उद्योगों में पाएं जाने वाले वेतन की तरह महँगाई के हिसाब से अपने-आप नहीं बढ़ती। हाल में जो महँगाई का दौर चला है उसमें एक साल में नज़र डालें, तो दूध, चावल, फल आदि की कीमतों ने तो आसमान छू लिया है (पांच साल में 40-80 प्रतिशत बढ़ोत्तरी) पर किसानों, कारीगरों और मजदूरों की आय में बढ़ोत्तरी नहीं के बराबर हुई है। बल्कि कई जगहों पर, जैसे हथकरघा उद्योग में और किसानी में, आय या मजदूरी घटी है। जब मजदूरी घटती है और कीमतें बढ़ती हैं तों बाजार जाने वाले को दोगुना धक्का पहुँचता है।

मगर समस्या केवल यहाँ तक सीमित नहीं है। महँगाई के दुष्परिणाम सब पर एक समान नहीं पड़ते। महँगाई न सिर्फ तमाम लोकविद्याधर समाज का जीवन स्तर घटाती है, बल्कि गैर-बराबरी भी बढ़ाती है। इसका असर अमीरों और मध्यम वर्गियों से ज्यादा गरीबों पर पड़ता है। इसकी कई वजहें हैं। जैसे हम पहले कह चुके हैं, मध्यम वर्ग के वेतन महँगाई के साथ बढ़ते हैं जबकि किसानों, कारीगरों और छोटे धन्धे वालों की आय में वृद्धि हो यह ज़रूरी नही है। एक और वजह यह है कि पैसे वालों के मुकाबले गरीब अपने धन का बड़ा हिस्सा नगद के रूप में रखता है, और पूँजी निवेश नही करता (जैसे शेयर, ज़मीन, अन्य सम्पत्ति आदि)। महँगाई की वजह से रूपये की कीमत (उसकी चीज़ें खरीदने की क्षमता) घटती है, और जिनकी बचत अन्य किसी रूप के मुकाबले नगद रूपये में ज़्यादा है, वे इससे अधिक प्रभावित होते हैं। तीसरी बात ये है कि आम आदमी के बजट में खाद्य पदार्थों (आटा, दाल, चावल, चीनी, दूध, सब्जी, फल) की अहमियत, पैसे वालों के बजट के मुकाबले बहुत ज्यादा है। इसलिए जब इन चीज़ों के दाम अन्य चीज़ों के मुकाबले ज़्यादा तेजी से बढ़ते हैं (जैसे कि पिछले कुछ सालों से लगातार हो रहा है) तो इसका दुष्परिणाम गरीब ही ज़्यादा महसूस करता है। एक बात और है, बाज़ार में खरीदने वाले के लिए जो खर्च है, बेचने वाले के लिए वही आय है। और अगर तैयार माल की कीमत बढ़ी मगर मजदूरी (जो लागत का हिस्सा है) वह नही बढ़ी तो इसमें मजदूर का नुकसान और मालिक का फायदा है। इसलिए महँगाई खरीदने वालों से बेचनेवालों, मजदूरों से मालिकों, और गरीबों से अमीरों तक आय का पुनर्वितरण करती है। कई विकासशील देशों का अध्ययन करने के बाद अर्थशास्त्री इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि इन सारी वजहों से महँगाई समाज में गैरबराबरी बढ़ा सकती है।

एक बात यहाँ कहना मुनासिब होगा। अगर अन्न बेचनेवालों का महँगाई की वजह से फायदा हो रहा है तो क्या महँगाई किसानों के लिए अच्छी है? बिलकुल नहीं। पहली बात यह है कि कई किसान, जैसे गन्ने के किसान, प्याज, कपास आदि जैसे नगद की फसल करने वाले किसान दाल, चावल, सब्जी किसी भी अन्य उपभोक्ता की तरह बाज़ार से ही खरीदते हैं। अगर उनकी फसल की कीमत आटे-दाल, चीनी जितनी नहीं बढ़ती, तो उन्हें भी महँगाई से नुकसान ही होता है। दूसरी बात ये है कि जिन किसानों की फसलों के भाव बाज़ार में बेतहाशा बढ़े हैं, उन्हें इस बढ़ौतरी का लाभ नहीं पहुँचा है। किसान को मिलने वाली कीमत और फुटकर कीमत में का अंतर लगातार बढ़ा है, और इसका फायदा व्यापारियों को हुआ है। नतीजा ये सामने आता है कि आम जनता दोनों तरफ से मार खा रही है।

तो क्या यह संभव है कि महँगाई बिलकुल हो ही न? क्या कीमतें ज्यों-की त्यों रहनी चाहियें? ऐसा सोचने में भी दिक्कत है। हमारी अर्थव्यवस्था एक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था है, जिसमें समाज के अनगिनत अंतर्विरोधों का आर्थिक विकास के ज़रिये ही प्रबंधन किया जाता है। और जहाँ आर्थिक विकास हो रहा है, वहाँ महँगाई तो रहेगी। सरकार रोज़गार बढ़ाना चाहती है, तो इस पूँजीवादी व्यवस्था के तहत उसका ऐसा करना महँगाई को भी बढ़ाएगा। इसकी एक वजह यह है कि रोज़गार बढ़ने पर मजदूरी या आय भी बढ़ती है, और मुनाफे का दर कायम रखने के लिए वस्तुओं की कीमतें भी बढ़ती हैं। लेकिन इस पूँजीवादी ढाँचे के अन्दर भी यह सवाल तो उठना ही चाहिए कि कौन सी चीज़ें महँगी हो रही हैं? जीवनावश्यक वस्तुओं के मुकाबले आराम की वस्तुएं महँगी हों तो हर्ज नहीं है। दूसरी बड़ी बात यह है कि संगठन के मार्फ़त असंगठित लोकविद्याधर समाज को महँगाई के मुकाबले अपनी आय बढ़ाने की लगातार कोशिश करनी होगी। वरना महँगाई गरीबों को मारेगी और महँगाई घटाने के लिए सरकारी कदम भी उन्हें परेशानी में ही डालेंगे।

महँगाई का अर्थशास्त्र-एक सरसरी नज़र

– नरेश कुमार शर्मा

'महँगाई की मार' इस नये जमाने का एक आम ज़ुमला है। पहला, दामों का कम या ज्यादा होना महँगाई या मंदी नहीं है। दामों का लगातार बढ़ते रहना और इन दामों के बढ़ते रहने की प्रवृत्ति का होना महँगाई है। महँगाई को समझने के लिए इस भेद को समझना बेहद ज़रूरी है। दूसरा, दामों के स्तर के कम या ज्यादा होने का आम खुशहाली से क्या सम्बन्ध है? आज से सौ या पचास साल पहले दामों के स्तर बहुत कम हुआ करते थे। साथ ही आम खुशहाली अब से कम ही थी। तीसरा, हम अक्सर देखते हैं कि ऐसी कुछ वस्तुएँ हैं जिनके दामों का बढ़ना एक बड़ी हलचल पैदा करता है, न कि किन्हीं भी वस्तुओं के दामों का बढ़ना। विशेषकर, चीनी, खाद्यान्न, पेट्रोल/डीजल आदि, आलू, प्याज और रेल-यात्रा के किराये में बढ़ोत्तरी इन वस्तुओं में शामिल हैं। इसके साथ जुड़ा है, चौथा मुद्दा—वस्तुओं की कीमतों में आम चढ़ाव की प्रवृत्ति होना या कुछ वस्तुओं के दामों का सापेक्ष रूप से उतार-चढ़ाव होना। इन दो प्रकार की घटनाओं के अर्थ और परिणाम अलग हैं। पाँचवाँ, ऐसी अर्थव्यवस्था की कल्पना करें जिसमें वस्तुओं का आपस में ही लेन-देन (विनिमय) होता हो। ऐसे समाज और अर्थव्यवस्था में 'महँगाई' शब्द का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता है। महँगाई का होना या न होना मुद्रा के माध्यम से लेन-देन वाली अर्थव्यवस्था में ही मायने रखता है। महँगाई के अर्थशास्त्र को समझने के लिए इस बात के महत्त्व को समझना जरूरी है।

एक अर्थतंत्र के संचालन में मुद्रा और वित्त-तन्त्र की मुख्य भूमिका बन जाने से जो आमूल-चूल परिवर्तन आ जाते हैं, उन सबकी चर्चा यहाँ सम्भव नहीं है, और वह एक अन्य लेख का विषय हो सकता है। अभी इतनी टिप्पणी ही काफी होगी कि जहाँ मुद्रा विनिमय और वित्त आधारित व्यवस्था उत्पादन के नये प्रकारों और बदले स्तर को सम्भव बनाती है, वही अभूतपूर्व संचय और उसके केन्द्रीकरण को भी सम्भव बनाती है—अतः ताज्जुब की बात नहीं है कि सकल उत्पादन और ग़ैर-बराबरी दोनों बढ़ते देखे गये हैं।

खैर, वापस महँगाई की बात पर आयें। महँगाई पर चर्चा में कई निदान और कई समाधान सुने जाते हैं। अक्सर यह बात ध्यान से चूक गई होती है कि अर्थव्यवस्था एक सम्पूर्ण तंत्र है, इसके किसी एक हिस्से को केन्द्र बिन्दु बनाकर महँगाई जैसे समग्र विषय को पकड़ना सम्भव ही नहीं है। बड़ी चर्चा रही कि पेट्रोल/डीजल के दाम बढ़ने से महँगाई से त्रस्त जनता को एक और धक्का लगेगा। आप चाहे सरकारी वस्तु का दाम बढ़ायें या उस पर और अन्य वस्तुओं पर कर बढ़ायें या आय पर कर बढ़ायें या घाटे का बजट बनायें,इनमें से हर एक कदम प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से महँगाई पर दबाव बनायेगा और सरकार को अपने खर्च के लिए इनमें से कम-से-कम एक कार्य तो करना ही होगा।

महँगाई को जमाखोरी, वायदा बाजार, इजारेदारी आदि से भी जोड़कर देखा जाता है। इनमें से कोई भी दामों के एक बार बढ़ जाने का फौरी कारण तो बन सकता है लेकिन महँगाई—यानि दामों के व्यापक स्तर पर बढ़ने की प्रवृत्ति—की वजह नहीं बन सकता। इन सभी (जमाखोरी, वायदा बाजार आदि) का सामाजिकता, नैतिकता, राजनैतिक सत्ता आदि पर अवश्य प्रभाव होगा, जो अपने आप में विचार का विषय है, पर ये महँगाई होने और बने रहने के सबब नहीं बन सकते।

महँगाई का एक और कारण पैदावार या आपूर्ति में कमी होने या फिर उत्पादन की लागत बढ़ जाने में देखा जा सकता है। लेकिन इससे भी (1) कीमतों में एक बारगी बढ़ोत्तरी तो हो सकती है, पर कीमतों का बढ़ना जारी नहीं रह सकता और (2) यह भी सिर्फ उन वस्तुओं में, जिनकी आपूर्ति कम हुई हो या लागत बढ़ी हो। उससे भी कीमतों में व्यापक स्तर पर बढ़ने की प्रवृत्ति यानि महँगाई की स्थिति नहीं बन सकती।

ऊपर के सभी कहे गये कारण या तो कीमतों के सापेक्ष उतार-चढ़ाव या फिर आम कीमतों में एकमुश्त अल्पकालीन बदलाव सिद्ध कर सकते हैं। इसलिए महँगाई बने रहने का दीर्घकालीन कारण मुद्रा के विस्तार (यानि मुद्रा आपूर्ति) में देखा गया है। इसमें कोई ताज्जुब भी नहीं है। याद करें कि महँगाई सिर्फ मुद्रा पर आधारित विनिमय वाली व्यवस्था में ही सम्भव है। अन्य जितने भी कारण गिनाये गये हैं वे सब उपयुक्त स्तर तक दाम बढ़ने पर स्वतः समाप्त हो जाते हैं—कारण न रहने पर कार्य का होते रहना भी सम्भव नहीं है। परन्तु मुद्रा का प्रसार एक अलग प्रकार का ही जन्तु है। कीमत बढ़ना कहीं से भी क्यों न शुरू हो, उससे मुद्रा प्रसार का जन्म हो सकता है—यह रिजर्व बैंक द्वारा तो होता ही है, परन्तु बैंकों द्वारा भी ऋण बढ़ाने के कदमों से या आम जनता द्वारा भी सम्भव है। महँगाई का होना और मुद्रा आपूर्ति में बढ़ोत्तरी होते रहना लगभग कभी न बिछुड़ने वाले हमजोली हैं—हालाँकि यह आवश्यक नहीं है कि महँगाई मुद्रा प्रसार के बाद ही आये। महँगाई की शुरुआत जैसे भी हो उसे बनाये रखने में मुद्रा प्रसार आवश्यक है।

इसका अर्थ यह नहीं है कि सरकार या रिजर्व बैंक कोई छड़ी घुमाकर महँगाई पर काबू पा सकते हैं। पहली बात, मुद्रा आपूर्ति एक हद तक रिजर्व बैंक द्वारा संचालित है, क्योंकि बैंक और आम जनता का व्यवहार भी मुद्रा आपूर्ति को प्रभावित करते हैं। दूसरे, मुद्रा आपूर्ति में परिवर्तन की दर को अचानक कम करने के नकारात्मक परिणाम होते हैं, उदाहरण के तौर पर ऋण में कमी या ऋण पर ब्याज में बढ़ोत्तरी से उत्पादन और उपभोग दोनों में गिरावट आयेगी।

महँगाई से हमारी रोजमर्रा की जिन्दगी और आर्थिक क्रिया-कलाप पर क्या असर होता है? यदि किसी वस्तु की कीमत बढ़ती है तो वह बढ़ी हुई कीमत कहीं-न-कहीं तो जायेगी। यदि उत्पादन में दूसरी वस्तुओं की लागत बढ़ी है तो वह लागत किसी और की तो प्राप्ति होगी ही, लागत खर्च निकाल कर बढ़े दाम का बाकी सब हिस्सा किसी-न-किसी की आय बनना है। तो यदि आय और दाम दोनों बढ़ते हैं तो उसका कोई विशेष नकारात्मक असर खुशहाली पर नहीं पड़ सकता।

दूसरी ओर कीमतें यदि सापेक्ष रूप से कुछ ही वस्तुओं की बढ़ी हों (जैसे कि खाद्यान्न या दालें) तो यह अर्थव्यवस्था में एक महत्त्वपूर्ण संकेत होता है कि इस क्षेत्र में किन्हीं कारणों से कुछ दिक्कतें हैं या फिर इस क्षेत्र की वस्तुएँ लोगों के अधिक काम की हैं। दोनों ही स्थितियों में संकेत यह है कि इन क्षेत्रों में अधिक संसाधन लगाने की आवश्यकता है। उदाहरण के तौर पर दालों के उत्पादन में कमी होने पर कीमतों के बढ़ने से किसान को राहत भी मिलती है और संकेत भी कि दालों का उत्पादन आगे से और बढ़ाने की जरूरत है। आवश्यकता है ऐसी व्यवस्थाओं की जिनसे ऐसी स्थिति में बढ़ी हुई कीमतें किसान/उत्पादक तक पहुँचें।

महँगाई के अर्थ

1. महँगाई सरकार की नीतियों का नतीजा है। इससे व्यवस्थित तौर पर शासक वर्गों को फायदा होता है।
2. मुद्रा स्फीति का अर्थ है बाजार में उपलब्ध सामानों की तुलना में पैसा अधिक हो जाय। जिससे माँग की तुलना में आपूर्ति घट जाती है और दाम बढ़ते हैं जिससे उद्योगपतियों व व्यापारियों को लाभ होता है।
3. गरीब वर्गों पर अत्यधिक प्रतिकूल प्रभाव पड़ने से बाजार में उनकी मजबूरी बढ़ती है जिसका नतीजा श्रम का वास्तविक मूल्य घटने में होता है।
4. अगर असंगठित मजदूरों और कारीगरों की मजदूरी महँगाई के चलते डेढ़ गुना होती नज़र आये तो निश्चित मानिये कि उनके जीवन-यापन का खर्च कम-से-कम दुगना हो गया है।
5. श्रम बाजार में स्त्रियों और बच्चों की आवक बढ़ती है। क्योंकि उन परिवारों की संख्या बढ़ती है जो एक आदमी की कमाई के बल पर न चलाये जा सकें।
6. कृषि उत्पादों का मूल्य हमेशा ही औद्योगिक उत्पादन व सेवाओं की तुलना में कम गति से बढ़ता है। यानि महँगाई से बाजार के मार्फत किसान की विद्या और श्रम की लूट बढ़ती है।
7. मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि महँगाई के जरिये किसानों, कारीगरों, मजदूरों और महिलाओं के मेहनत और विद्या के बल पर पैदा की गई सम्पदा बढ़े हुये पैमाने पर पूँजीपतियों, व्यापारियों और व्यावसायिक वर्गों की ओर स्थानांतरित की जाती है। यानि महँगाई गरीब वर्गों के शोषण में वृद्धि की एक व्यवस्थित नीति है।

बस्ती जिले में भारतीय किसान यूनियन

भारतीय किसान यूनियन के पूर्वांचल अध्यक्ष दीवान चन्द चौधरी के नेतृत्व में बस्ती जिले के किसानों की समस्याओं को लेकर निम्नलिखित मुद्दों पर धरना प्रदर्शन, पंचायतें, चक्काजाम, रेलजाम, तथा कई प्रकार के संघर्ष चलाये गये जो निम्नलिखित प्रकार से है।

मुन्डेरवाँ गन्ना सुगर मिल पर संघर्ष– बस्ती जिले में 1998 से ही मुन्डेरवाँ गन्ना सुगर मिल शासन द्वारा बन्द कर दी गयी थी। इस मिल से 618 गाँवों के 40 हजार किसान लाभान्वित होते थे। उ0 प्र0 सरकार ने मिल बन्द करने के साथ-साथ गन्ने के दाम को 95 रुपये से 64 रुपये प्रति कुन्तल घटाकर कर दिया। जिससे किसानों **को** दोहरी क्षति होने लगी। नवम्बर 2002 में भा0 कि0 यू0 के पूर्वांचल अध्यक्ष दीवान चन्द चौधरी ने हजारों किसानों के साथ मिल गेट पर विशाल पंचायत की। किसानों की भारी भीड़ ने पंचायत को धरना-प्रदर्शन का स्वरूप दे दिया। किसानों ने एक सप्ताह तक मिल गेट पर धरना दिया। जिसमें प्रशासन ने 67 किसानों को गिरफ्तार करके जेल भेज दिया। मिल के आस-पास के गाँव वालों को जब यह खबर शाम 5 बजे मिली तो गाँवों से भारी संख्या में आये किसानों ने फिर से धरना शुरू कर दिया। कई दिनों के बाद भी जब प्रशासन ने 67 लोगों को रिहा नहीं किया तो किसानों की भीड़ ने मुन्डेरवाँ स्टेशन पर पहुँचकर स्टेशन पर कब्जा कर लिया तथा रेल जाम करने लगे। रेल जाम करते समय पुलिस ने किसानों पर गोलियाँ चलायी और पुलिस की गोली से तीन किसान तिलकराज, बद्री प्रसाद, धर्मराज मारे गये।

11 दिसम्बर 2002 को ये किसान शहीद हुए थे इसलिए भा0 कि0 यू0 के कार्यकर्ताओं ने अपने पैसे से मुन्डेरवा चौराहे पर शहीद स्मारक बनवाया जहाँ प्रत्येक वर्ष 11 दिसम्बर को शहीद किसान मेला लगाया जाता है। इस मेले में भारतीय किसान यूनियन के राष्ट्रीय अध्यक्ष चौधरी महेन्द्र सिंह टिकैत भी शामिल होते हैं।

किसानों ने 67 गिरफ्तार किसानों को छुड़ाने के लिए 10 दिनों तक धरना दिया जिसमें चौधरी राकेश सिंह टिकैत भी शामिल हुए। उन्होंने जिलाधिकारी से वार्ता की, प्रशासन ने 67 लोगों को रिहा किया तथा किसानों का धरना समाप्त हुआ। इसमें दीवान चन्द चौधरी (पूर्वांचल अध्यक्ष भा0 कि0 यू0), शोभाराम ठाकुर (जि0 अ0 भा0 कि0 यू0), दीवान चन्द पटेल, नायव चौधरी, जयराम चौधरी, राजेन्द्र चौधरी, रामचन्दर सिंह, रामफेर चौधरी, श्याम चन्द यादव, डा0 आर0 पी0 चौधरी, त्रिलोकीनाथ, राजनारायण चौधरी, रामअवतार, रामधनी चौरसिया, घनश्याम, महेश प्रसाद, मेवालाल और राम तिलक शर्मा प्रमुख रूप से शामिल रहे।

जिले में भारतीय किसान यूनियन ने बिजली, खाद, बीज, पानी के लिये समय समय पर संघर्ष किये हैं। जमीन अधिग्रहण के सवाल पर हमारी मांग है कि कृषि योग्य जमीन का अधिग्रहण न हो। सरकारी योजनाओं का लाभ सही ढंग से लोगों तक पहुँचे इसके लिये भी यूनियन ने पहल ली है।

– शोभराज यादव
बस्ती जिलाध्यक्ष, भा.कि.यू.

सरायमोहाना के लोकविद्याधर

–आरती

वाराणसी में काशी स्टेशन की रेलवे क्रासिंग को पार कर पूर्व की ओर बढ़ने पर करीब 2 किमी0 चलने के बाद गंगा-वरुणा का संगम है। जहाँ वरुणा नदी को पार करने के लिए लकड़ी का अस्थाई पुल है, जो केवल जाड़े व गर्मियों में ही रहता है। बरसात में यह टूट जाता है और लोग नाव से नदी को पार करते हैं। नदी को पार कर कुछ कदम चलने के बाद सरायमोहाना गाँव है। इसके उत्तर में गंगा नदी तथा दक्षिण में कृषि फार्म है। यह ज़मीन पहले गाँव के लोगों की थी लेकिन अब उस पर कृष्णामूर्ति फाउण्डेशन का कब्जा है। इसके पश्चिम में राजापुर, तातेपुर, मुस्तफाबाद इत्यादि गाँव बसे हुए हैं।

सरायमोहाना गाँव 5-6 हजार की आबादी वाला गाँव है। जिसमें मुख्यतः तीन जातियों के लोग रहते हैं। मल्लाह इनकी संख्या सबसे अधिक है, दूसरे हरिजन जो करीब 100 घर होंगे और तीसरे सोनकर हैं।

मल्लाह जातियों के लोग मछली मारने का काम करते हैं लेकिन अब उस पर भी सरकार की तरफ से प्रतिबंध लगने की वजह से उनका काम हाथ से जाता रहा। ये लोग अच्छे गोताखोर होते हैं लेकिन फिर भी नौकरियों में इनकी कोई पूछ नहीं है क्योंकि ये पढ़े लिखे नही हैं।

बुनकरी में मंदी से पहले गाँव के 60-70% लोग साड़ी बुनने का काम करते थे। हरिजन बस्ती के लोग पूरी तरह इसी व्यवसाय पर निर्भर थे लेकिन इस उद्योग के टूटने से इनकी स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गई है। जहाँ पहले गाँव के रास्ते चलने पर करघे व मशीनों की गूँज सुनाई देती थी अब वहाँ सन्नाटा छाया हुआ है। अब इस गाँव में मुश्किल से केवल गिनती के 12-15 हथकरघे ही बचे हुए हैं। वो भी कब बन्द हो जायेंगे कुछ कहा नहीं जा सकता। मल्लाह बस्ती के आधे लोग दुबई, अरब, मुम्बई, मद्रास आदि शहरों में नौकरियों के लिए चले गये और हरिजन बस्ती के लोगों में कुछ मनरेगा में और कुछ रिक्शा ट्राली चलाने का काम करने लगे। गाँव के पास वृक्ष लगाने तक की भी जमीन नहीं है, इनकी सारी जमीनों पर फाउण्डेशन वाले कुण्डली मारे बैठे हुए हैं, अतः वे खेती भी नही कर सकते।

गाँव की महिलायें मछली व सब्जी (मार्केट से खरीद कर) बेचने तथा हलवाईयों के साथ शादी-ब्याह आदि समारोह में मजदूरी का काम करती हैं, जिसमें 12-15 घण्टे, वो भी रात के समय, जिसका 100 रूपये मजदूरी पाती हैं। कुछ महिलायें बिन्दी लगाने का, कुछ आसन बुनने का काम करती है जिसमें दिनभर में 15-20 रुपये का काम ही कर पाती हैं। जमीन न होने के कारण ये छोट-मोटा कोई खेती का काम भी नहीं कर सकतीं। यह गाँव पूरी तरह उद्योग पर निर्भर है और मुख्यतः साड़ी उद्योग के टूटने से यह जर्जर स्थिति में पहुँच गया है। ऐसे पता नही कितने गाँव होंगे जो उदारीकरण, वैश्वीकरण व मशीनीकरण की बलि चढ़ गये होंगे। ये लोकविद्याधर संगठित न हों अतः इन्हें भ्रमित व गुमराह करने के लिए यह कहा जाता है कि जनसंख्या वृद्धि बेरोजगारी का कारण है। अन्य कारण भी बतलाये जाते हैं जो की सही नहीं होते।

गाँव में एक प्राथमिक विद्यालय है जो पांचवीं कक्षा तक है। ज्यादातर बच्चे इसी में पढ़ने जाते हैं। 8-10% बच्चे कानवेन्ट व इंग्लिश मिडियम स्कूलों में जाते हैं। 5% से भी कम बच्चे कालेजों तक पहुँच पाते हैं। 8-10% लड़कियाँ ही इण्टर व हाई स्कूल के बाद पढ़ाई कर पाती हैं। ढंग का कोई उद्योग व व्यवसाय न होने के कारण लोग अपने बच्चों को शिक्षित नही कर पाते और सरकार द्वारा जो शैक्षणिक सुविधायें प्रदान की जाती हैं उसके बल पर नौकरी भी नहीं मिल सकती।

अतः इन समस्याओं से लड़ने के लिए इन सभी लोकविद्याधरों को संगठित हुए बिना कोई बात बनती नहीं दिखती है। छोटे उद्योग पर कम्पनियों का आधिपत्य है व लोकविद्याधरों के उत्पाद को बाजार में स्थान नही मिलता। संगठन बनाकर संघर्ष करने के अलावा इनके पास कोई रास्ता नही है। मशीनीकरण के चलते इन लोगों की हालत अत्यन्त शोचनीय होती जा रही है। अतः इन सबके खिलाफ लड़ाई लड़े बगैर इन्हें इनका हक नही मिल सकता।

नारायनपुर में किसानों का धरना

मिर्जापुर में 11 अगस्त को किसानों के धरने का मुख्य मुद्दा गेट को खोलने, मिर्जापुर जिले को सूखाग्रस्त घोषित करने व चकबन्दी में हो रहे अनियमितता को दूर करना रहा। धरना में लगभग 4-5 सौ किसान शामिल हुए और रेलवे फाटक को खोलने की माँग की। किसानों ने कहा कि प्रशासन बिल्कुल संवेदनहीन और नासमझ हो गया है। लाइन पार (रेल लाइन के दक्षिण) यदि कोई बीमार पड़ जाय तो नारायनपुर, रामनगर या वाराणसी ले जाना हो तो 22-25 किमी0 अधिक यात्रा करके ही इलाज करवाने के लिए ले जाया जा सकता है। कार्यक्रम में एस. डी. एम. आये और उन्होंने कहा कि 17 अगस्त से हल्के वाहनों के लिए पुल खोल दिया जायेगा। 21 अगस्त से बड़े वाहनों के लिए खोल दिया जायेगा। जिले को सूखाग्रस्त घोषित करने के सवाल पर उन्होंने कहा कि यह उ0 प्र0 शासन स्तर पर तय किया जाता है लेकिन जिले की स्थिति को देखते हुए सूखाग्रस्त करने के लिए लिखूँगा।

इस कार्यक्रम में जिलाध्यक्ष अली जमीर खाँ, मण्डल अध्यक्ष प्रहलाद सिंह, छविनाथ सिंह, डा0 राम सागर सिंह, उ0 प्र0 प्रमुख महासचिव राजेन्द्र प्रसाद शास्त्री, चन्दौली जिलाध्यक्ष- गजानन्द, वाराणसी जिलाध्यक्ष- लक्ष्मण प्रसाद मौर्य शामिल रहे।

उत्तर प्रदेश में पंचायत चुनाव अक्टूबर में

भारतीय किसान यूनियन का यह मानना है कि गाँव किसी भी न्याय संगत व्यवस्था की धुरी होता है। गाँव की खुशहाली, गतिशीलता और नेतृत्व के बगैर गरीबी, अशिक्षा, अपराध और विपरीत महानगरीय संस्कृति किसी का भी हल संभव नही है। देश और दुनिया की क्षमताओं के स्रोत गाँव ही हैं।

आज गाँव की खुशहाली और सक्रियता दो पायों पर फिर से बनाई जा सकती है-

(1) सरकारी योजनाओं को पूरी ईमानदारी से लागू करके और

(2) गाँव समाज की विद्या को ग्रामीण समस्याओं के हल में और निर्माण की हर प्रक्रिया में समुचित स्थान देकर।

ग्राम प्रधान का चुनाव गाँव के लिए बहुत महत्व रखता है। ज्यादा पैसा खर्च करने वाले, साड़ी, कम्बल और शराब बाँटने वाले उम्मीदवारों को नकारकर नीचे दिये हुए बिन्दुओं पर गहराई से विचार करें और गाँव हित को सर्वोपरि रखने का माहौल बनायें।

1) ग्राम प्रधान गाँव का प्रतिनिधि है, सरकार का नुमाइन्दा नहीं। गाँव का हित उसके लिए सर्वोपरि है।

2) सरकारी योजनाओं को लागू करने के साथ-साथ गाँव की समस्यायें जैसे बिजली, पानी, बीज, खाद उत्पादन का जायज़ मूल्य आदि मुहैया कराने में उसे पहल लेनी चाहिए।

3) विकास अथवा राहत के लिए आने वाला सरकारी पैसा वास्तव में गाँववालों का ही है। सरकार को केवल इस पैसे के ट्रस्टी के रूप में देखा जाय।

4) पंचायत सदस्यों के अलावा पंचायत समितियों जैसे कृषि समिति, शिक्षा समिति, स्वास्थ्य समिति, विकास समिति आदि में गाँव के इन क्षेत्रों में जानकार लोगों को शामिल किया जाय।

5) नरेगा, आवास, लाल कार्ड, पेन्शन आदि के लिए लाभार्थी चयन प्रक्रिया ग्राम सभा में होनी चाहिए।

भारतीय किसान यूनियन
वाराणसी मण्डल

पेज 1 का शेष

हिमांशु की जनजागरण यात्रा

से शहरी सामाजिक कार्यकर्ता हैं बस हम ही सब जगह दिखाई देते है। जो जमीनी संघर्षों में है, बलात्कार पीड़ितों के लिए लड़ रहे हैं, किसानों की ज़मीन जाने के खिलाफ लड़ रहे हैं, कोई मज़दूरी के लिए लड़ रहे हैं उन लोगों को सरकार जेलों में सड़ा देती है। देश स्तर पर वे नहीं दिखाई देते हैं, उनकी कोई आवाज नही है। जरूरत है कि छोटे-छोटे स्तर पर जो ये शहीद हो रहे हैं उनकी बात, इनके बारे में ऊपर तक ख़बरे आये। यह पता चले कि ज़मीनी स्तर पर कैसे-कैसे संघर्ष और विरोध चल रहे हैं। इन विरोधों के साथ हमें जुड़ने की ज़रूरत है। और समर्थन करने की ज़रूरत है। सारे विरोध एक तरह के हैं। दन्तेवाड़ा से लगातार राजस्थान तक। दन्तेवाड़ा में भी वही स्थिति है कि बड़े लोग बच्चियों की इज्ज़त लूटते हैं पुलिस इन बड़े लोगों को बचाती है और जो आवाज़ उठाता है उसको जेल में डाल देती है। वही राजस्थान में भी स्थिति है, वही दन्तेवाड़ा और वही पंजाब में।''

''इस यात्रा का उद्देश्य एक तो मैं यह जानना चाहता हूँ कि लोग क्या सोच रहे हैं और दूसरा यह कि हल क्या है? मेरे पास इतना दिमाग नही है कि मैं हल निकाल सकूँ। हल भी जनता देगी। इसीलिए हम जनता के बीच जा रहे हैं कि जनता से हमें कुछ समझ मिले कि हल क्या है। हम शहर में बैठकर कुछ पका लें और पकाकर ये बतायें कि यह हल है ये काम नही करता है।''

– इंटरनेट से

●

पेज 5 का शेष

आन्ध्र प्रदेश में लोकविद्या ...

आंध्र प्रदेश के एक युवा प्रतिभावान कलाकार श्री वी नरसिंह राव ने गांधी जी की प्रेरणा से कारीगरी जीवन और समाज पर कागज से तैयार एक मूर्ति श्रृंखला का निर्माण किया है। इसमें विभिन्न कारीगरी विद्याओं के आपसी सम्बंधों को मूर्त रूप से उतारा गया है। **लोकविद्या साधिकार संगठन** उसकी एक मोबाइल प्रदर्शनी की दिशा में कार्यरत है। विचार है कि यह प्रदर्शनी आन्ध्र प्रदेश के प्रत्येक भाग की यात्रा करेगी और जहाँ-जहाँ यह प्रदर्शनी जायेगी वहाँ-वहाँ एक या दो दिन रुक कर लोकविद्या, कारीगर समाजों के आपसी संम्बन्धों और आगे की दिशा पर जन-जन में चर्चायें की जायेंगी।

लोकविद्या से जुड़े और भी कई कार्य होंगे जो कि लोकविद्याधरों से जुड़े व्यक्ति अलग-अलग जगहों पर किया करते हैं। यूं तो इस कार्य में अनेक लोग कम ज्यादा योगदान करते आये हैं, पर इनमें कुछ प्रमुख लोग जो रहे हैं वे हैं सर्वश्री मोहन राव, बी. कृष्णराजुलु, अभिजित मित्रा, नरेश शर्मा, रवीन्द्र शर्मा, उजरम्मा, सुधाकर रेड्डी, पी. वी. सुब्बाराव, भानु प्रसाद, यादगिरी, निवासुलु आदि।

यह कार्य आगे कैसे बढ़ेगा, आपसी तालमेल में क्या कठिनाइयाँ हैं, लोकविद्या धारकों और अन्य विद्याधारकों में कैसे संबन्ध होने हैं आदि प्रश्न एक नया समाज बनाने के लिए प्रासंगिक हैं। आन्ध्र प्रदेश में हाल ही में और भी राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक सवालों ने जोर पकड़ा है। आगे आने वाले दिनों में इन सवालों को भी लोकविद्या के परिप्रेक्ष्य में समझने की आवश्यकता होगी।

●

पीपली लाइव–क्या गाँव फिर से ज़िन्दा होंगे?

– चित्रा सहस्त्रबुद्धे

अनुषा रिज़वी के निर्देशन में बनी पहली ही फिल्म है—पीपली लाइव और इसने भारतीय सिनेमा को एक नई दिशा दी है, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। कला, विषय-वस्तु और प्रस्तुति के क्षेत्र में एक नया मोड़ लाने में वे निश्चित ही सफल हुई हैं। उन्होंने आज की सबसे ज्वलंत समस्या—गाँव में किसानों की बदहाली को ऐसे समय बॉलीवुड की दुनिया में लाया है जब गाँव और किसान दोनों की दुनिया सिनेमा और टी.वी. पर एक लम्बे समय से गायब हो चुकी है। पीपली लाइव ने उन सारे दावों को झुठला दिया है जिनके मार्फत सिनेमा, टी.वी. और मनोरंजन की दुनिया में सेक्स, ग्लैमर, हिंसा, खर्चीले सेट, चमक-दमक से भरी दुनिया दिखलाई जाती है और कहा जाता है कि जनता यही चाहती है।

पीपली लाइव एक गाँव के दो किसान भाइयों की मजबूरी और इनके प्रति मीडिया के झूठे व असंवेदनशील नजरिये को सामने लाती है। पीपली गाँव का नाम है और इस गाँव में कर्जे के बोझ में दबे किसान भाइयों में से एक भाई के आत्महत्या करने की घोषणा से मीडिया चैनलों में मची प्रतिस्पर्धा की दौड़ से मची विभत्सता का आँखों देखा हाल ही पीपली लाइव की कहानी है। घटनाओं के तेज चक्र के बीच स्थानीय नेता, विधायक, सांसद, केन्द्रीय मंत्री, पुलिस, बैंक, बीज कम्पनी और मीडियाकर्मी सभी के लोकविरोधी और असंवेदनशील चरित्र की असलियत खुलती चली जाती है। शासन-प्रशासन का कोई भी हिस्सा गाँव या किसान के पक्ष में नहीं है। इन सबके बीच जो थोड़ी-बहुत संवेदना दिखाता है वह है स्थानीय हिन्दी अखबार का एक संवाददाता जिसे अंत में मरना पड़ता है। यानि इस व्यवस्था में किसान और गाँव के प्रति कोई संवेदना नहीं है और अगर होगी तो उसे मरना ही होगा। यह आज के भारत की तस्वीर है।

लेकिन पीपली लाइव की विशेषता सत्ता और सत्ता के अलग-अलग तंत्रों के, मीडिया सहित, झूठे और जनविरोधी चरित्र को दिखाने में नहीं है और न इस सिनेमा का वह प्रमुख हिस्सा है। पिछले 15 वर्षों में बॉलीवुड में ऐसी तमाम फिल्में बनी हैं जिनमें सरकार, राजनैतिक दल और नेता, पुलिस और मीडिया के भ्रष्ट और शोषक चरित्र को सामने लाया गया है। पीपली लाइव की विशेषता तो उस किसान की आवाज को लोगों तक पहुँचाने में है जो चिल्लाकर कह रहा है कि इंडिया की चमक किसान की बलि चढ़ाकर बढ़ाई जा रही है।

1980-90 के दौर में देशभर में हुये अराजनैतिक किसान आंदोलनों ने ही पहली बार विकास नीति के चलते बन रहे भारत-इण्डिया विभाजन के सिद्धान्त को सामने लाया था और यह कहा था कि इण्डिया की बढ़ती चमक का राज भारत में बसे किसानों की बलि में है। यह विचार पूँजीवादी व्यवस्था को प्रभावी चुनौती देने का विचार था। 1995 से 2010 तक देशभर में हुई किसानों की आत्महत्याओं ने किसान आंदोलन की इस समझ को सही ठहराया। अफसोस यह कि किसान आंदोलन अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाया लेकिन राजनैतिक विचार व दर्शन में इस किसान आंदोलन का क्रान्तिकारी योगदान माना गया है। पीपली लाइव ने इस दर्शन का आधार लेकर अपनी विषय-वस्तु बनायी है। यही वजह है कि भारत-इण्डिया का प्रखर विभाजन सिनेमा में भी बेहद प्रभावी ढंग से सामने आता है।

सिनेमा का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष किसान परिवार का चित्रण है। पहली बार लगा कि किसान परिवार के मार्फत हम भारत के गाँवों की सच्चाई सामने लाने का साहस रखते हैं। आर्थिक-सामाजिक-राजनैतिक सभी तरह की मजबूरियों में जी रहा यह परिवार भारत के गाँवों को एक नये नज़रिये से देखने का आग्रह करता है। इस बेहद गंभीर विषय को जो बॉलीवुड में प्रचलित विषय से बहुत हटकर है, को बिना किसी फिल्मी मसाले के, बिना किसी लाग-लपेट के सामने लाना और दर्शकों को पूरे समय बाँधे रखना निस्संदेह तारीफ के काबिल कला-कार्य है लेकिन उससे भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण यह है कि सिनेमा गाँवों और किसान के फिर से ज़िन्दा हो उठने की एक संभावना के लिये भी जगह बनाता है। ऐसा कैसे?

प्रेमचंद ने गाँव और किसान पर बहुत-सी कहानियाँ लिखीं, जिससे हमारे देश की बहुसंख्य आबादी का एक वास्तविक चित्र उभरा। इसी दौर में इस इलाके के किसानों के बीच बाबा रामचंद्र और स्वामी सहजानंद के संगठन कार्य और संघर्ष देखे जा सकते हैं। इसी समय महात्मा गाँधी दुनिया का ध्यान गाँव की वास्तविकताओं और शक्तियों की ओर खींच रहे हैं। इन सबके चलते प्रेमचंद गाँव और किसान को वास्तविक धरातल पर देखने का आग्रह निभा पाये।

पीपली लाइव इस कड़ी में आज हमारे सामने है। पीपली लाइव में भी गाँव और किसान को आज के वास्तविक धरातल पर देखने का आग्रह है न कि परम्परा के नाम पर किन्हीं कल्पित पूर्वाग्रह के बल पर और न विश्वविद्यालय की शिक्षा के मूल्यों की परकीय चौखट के बल पर। इसीलिये इस फिल्म के ग्रामीण चरित्र चारों तरफ मजबूरी से घिरे होने के बावजूद कोरी सहानुभूति नहीं खींचते और न स्वयं अन्याय के विरुद्ध सुपर एक्शन लेते हैं बल्कि दर्शक के मन को इस अन्याय के विरुद्ध एक सामाजिक पहल लेने या न ले पाने की बेचैन ऊर्जा से भरते हैं।

पेज 3 का शेष

किसान आत्महत्या-समस्या और हल

चना दाल भी क्यों नहीं चढ़ा पाई। बात यह है कि विश्व के बाज़ार में सस्ता सफेद चना उपलब्ध है। इसे 2000 रु0 प्रति कुन्तल के हिसाब से आयात कर चने के बेसन में मिलाया जा रहा है। चने पर आयात कर नहीं है- सरकार इसे रद् कर चुकी है। शक्कर की भी यही कहानी है। विश्व बाज़ार में इसका दाम 800-1000 डालर प्रति टन तक बढ़ गया था। इसके आयात पर 60 प्रतिशत आयात कर था, जिसे अब शून्य कर दिया गया है। फिर भी आयात करके शक्कर के दाम घटाना अभी सम्भव नही है। जब शक्कर का उत्पादन काफी बढ़ा था तब सरकार ने 145 रु0 प्रति कुन्तल तक की निर्यात सबसिडी दी थी। शक्कर में तेजी है लेकिन तेल गिरा है। 80 रु0 प्रति किलो का सोयाबीन तेल 60 रु0 तक गिरा। सरकार खाद्य तेलों में तेजी क्यों नही ला पायी? कारण स्पष्ट है- पाम तेल 1400 डालर से 800 डालर प्रति टन पर आ गिरा है। यह दाम करीब 3600 रु0 प्रति कुन्तल का बनता है। तेल की आयात पर लगने वाला 85 प्रतिशत कर सरकार ने हटा दिया है।

इन सब बातों से एक ही बात स्पष्ट होती है। सरकार किसी भी दल की क्यों न हो कल अगर विश्व बाज़ार में भाव गिरते हैं, तो आयात को हर प्रकार से बढ़ावा देकर स्थानीय भाव गिराने से सरकार जरा भी कतरायेगी नही। मुद्रास्फीति की वर्तमान व्यवस्था में किसान और खेतीहर मज़दूर जियें तो किस तरह!

भारत सरकार ने 71 हजार करोड़ की कर्जमाफी की। यह योजना कुछ समय राहत दिलाने से अधिक कुछ नहीं। इस योजना में भी असिंचित ज़मीन के किसान पर अन्याय बरपा गया। महाराष्ट्र के बारे में भी अगर सोचा जाय तो 7000 करोड़ रु0 की कर्ज माफी की कुल राशि का आधा हिस्सा, अर्थात 3500 करोड़, पश्चिम महाराष्ट्र को मिला, जबकि विदर्भ के हिस्से आया 18% और मराठवाडे के 22%। महाराष्ट्र के बचे हुए इलाकों ने पाया 10 प्रतिशत।

पिछले दो वर्ष विदर्भ में सूखा है। कर्ज माफी की रकम तो यह सूखा ही निगल गया। दो साल से फसल कर्ज वापस नहीं हो सका है। साहूकार तो सर चढ़े ही हैं। तदर्थ योजनाएँ किसी काम की नहीं, दीर्घ कालीन कदमों की आवश्यकता है। ऐसे कदमों में नीचे की बातें करनी होंगी यह मेरा सुझाव है।

1. हमारी माँग है कि ज़मीन की मात्रा को अनदेखा कर सीधे 50,000 रु0 तक के कर्ज माफ किये जायें। यह तुरन्त होना चाहिए।
2. विकसित देशों में किसी में भी सरकारी अनुदान के बिना खेती नहीं होती। हमारे देश में कृषि के लिए जो अनुदान हैं वे अधिकतर सिंचित क्षेत्रों में हैं। जैसे, नहर के पानी पर अनुदान, बिजली पर अनुदान, रासायनिक खादों पर अनुदान, इ0। सूखी खेती करने वालों को इन अनुदानों से कोई लाभ नहीं है। सरकार को चाहिए कि वह सूखी खेती करने वालों के लिए प्रति एकड़ 5,000 रु0 सालाना अनुदान देने की घोषणा करे।
3. महँगाई की परिभाषा की जाय।
4. आज की फसल बीमा योजना अन्यायकारक है। उसे बदलकर गाँव स्तर की योजना बननी चाहिए। कम उपज के वर्ष मात्र कर्जा वापस किया जा सके इसका प्रावधान करने के बजाय, उस वर्ष किसान अपने परिवार का जीवनयापन करा सके इसका भी विचार योजना में होना होगा।
5. खेतीहर मज़दूर का वेतन छठे वेतन आयोग के न्यूनतम वेतन के स्तर का हो और इस वेतन को हिसाब में जोड़ते हुए कृषि मूल्य आयोग कृषि उत्पाद के दामों को तय करे। ये भाव बाज़ार में पाये जा सकें इसके लिए सरकार बाज़ार में हस्तक्षेप करे।

और अन्त में यह भी स्पष्ट रूप से कहना चाहूँगा अगर राज्य और केन्द्र सरकारें शहरीकरण के लिए जो भी अनुदान देती हैं वे सारे बन्द करने का कार्य करती हैं तो भारतीय किसान को किसी भी अनुदान की न तो कोई ज़रूरत है, न ही इच्छा! क्या ये सरकारें यह करने की इच्छा शक्ति रखतीं हैं?

●

लोकविद्या की समाजदृष्टि

1. सभी को अपनी विद्या के बल पर जीवन चलाने का मौलिक अधिकार हो।
2. कृषि उत्पाद को जायज़ दाम हो।
3. राष्ट्रीय संसाधनों का गाँव और शहर में बराबर का बँटवारा हो।
4. घर-घर में उद्योग हो।
5. स्थानीय बाजार को संरक्षण हो।
6. अधिकतम और न्यूनतम आय में 5:1 से अधिक का अनुपात न हो।
8. गाँव-गाँव में मीडिया स्कूल हो।
9. उच्च शिक्षा के दरवाजे सबके लिये खुले हों।
10. लोकविद्या को विश्वविद्यालय के ज्ञान के बराबर का दर्जा हो।

किसान, कारीगर, आदिवासी, छोटा दुकानदार एक हों

क्योंकि

सूचना युग में कम्प्यूटर-इंटरनेट और वैश्वीकरण मिलकर किसानी, कारीगरी, छोटी दुकानदारी को उजाड़ रहे हैं, मज़दूरी को घटा रहे हैं।

कैसे?

1. इनके श्रम को बाजार में कम दाम देकर
2. इनके ज्ञान यानि लोकविद्या को लूटकर
3. शिक्षा को महंगी बना कर व इन्हें नये ज्ञान से वंचित कर

आइए

1. लोकविद्या के बल पर जीविका के अधिकार का दावा करें।
2. सूचना युग में श्रम और ज्ञान की लूट को रोकने के उपाय खोजें।
3. बाजार और ज्ञान के क्षेत्र में हो रहे शोषण की समझ और विरोध को आकार दें।

बुक पोस्ट

लोकविद्या पंचायत, मासिक समाचार पत्र, विद्या आश्रम (सा 10/82 ए, अशोक मार्ग, सारनाथ, वाराणसी-221007) की ओर से **डा.चित्रा सहस्त्रबुद्धे** द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित।
website : vidyaashram.org **Blog :** lokavidyapanchayat.blogspot.com **e-mail :** vidyaashram@gmail.com **Phone :** 9452824380
प्रेस : **सत्तनाम प्रिण्टर्स**, एस-1/208 के-1, नई बस्ती, पाण्डेयपुर, सारनाथ रोड, वाराणसी-221002